शरद- '९३
वर्ष ४, अंक ३

अस्थिरोग विशेषांक

द्वैमासिक

जीवनीय

स्वास्थ्य पत्रिका

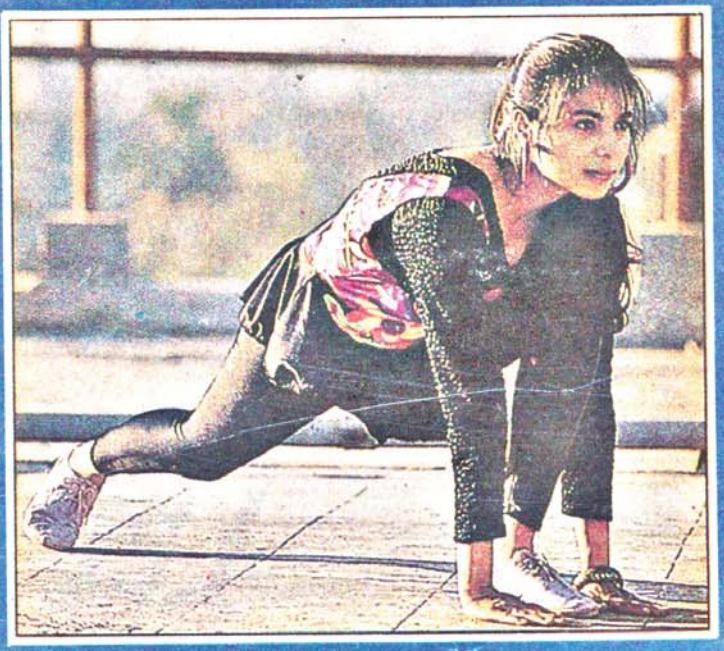

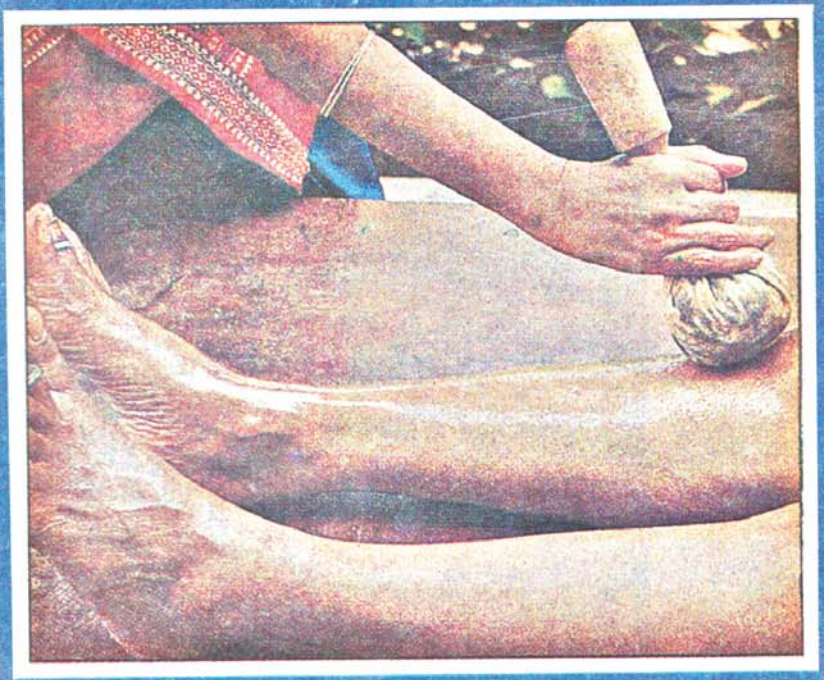

- संधिशोथ एवं वृद्धावस्था
- बच्चों में रिकेटस
- वयस्कों में अस्थिरोग
- संधिवात या आर्थ्राइटिस
- हड्डियों की देखभाल

मूल्य रू. १०

जीवनीय द्वैमासिक

मानद संपादक मंडल (लखनऊ)
पं. काशीनाथ गोपाल गोरे
डॉ. पारस नाथ मिश्र
वैद्य पूर्ण चंद्र जैन
डॉ. प्रेम सागर
वैद्य बदलू राम रसिक
डॉ. बिशन नारायण मेहरोत्रा
वैद्य ब्रज बिहारी मिश्र
डॉ. एम. पी. शुक्ल
डॉ. रवि कुमार शर्मा
डॉ. रेनु महेन्द्र
वैद्य सुल्तान अली खां
डॉ. सी.एस. सैंबी
डॉ. हरि प्रकाश शर्मा

कार्यकारी संपादक
डॉ. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

संयोजक
पं. माधवाचार्य

संपादकीय सहायक
कु. वीना टंडन
वैद्य श्रीनिवास पाण्डेय

साज-सज्जा
श्री संदीप सेनगुप्ता

इस पत्रिका के लिये कापार्ट से मिले अनुदान के हम आभारी हैं।

जीवनीय संबंधित समस्त विवादों का निपटारा लखनऊ के न्यायालयों के आधीन होगा।

जीवनीय सोसायटी की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा द्वारा प्रकाश पैकेजेंस, २५७ गोलागंज लखनऊ-१८ से मुद्रित तथा ई-III/ २४९ सेक्टर एच, अलीगंज लखनऊ-२० से प्रकाशित, संपादक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

संपादकीय कार्यालय
जीवनीय
ई-III/२४९, सेक्टर एच
अलीगंज लखनऊ-२२६०२०
फोन-०५२२-७७५६८

अतिथि संपादक
वैद्य विलास म० नानल
डा० डी० पी० सिंह

वर्ष ४, अंक ३
१६ सितम्बर - १५ नवम्बर, १९९३

संपादकीय सलाहकार समिति
वैद्य अयोध्या प्रसाद अचल, गया
हकीम अल्ताफ अहमद आजमी, नई दिल्ली
डॉ. गीता बामेजई, नई दिल्ली
वैद्य विवेकानंद पांडे, नई दिल्ली
वैद्य भगवान दाश, नई दिल्ली
वैद्य मायाराम उनियाल, नई दिल्ली
डॉ. टी. के. अब्दुल रज्जाक, पालक्कड़
वैद्य शिव कुमार मिश्र, पीलीभीत
वैद्य सुभाष रानाडे, पुणे
डॉ. उमा, बंगलूर
डॉ. भारतेन्दु प्रकाश, बाँदा
श्री ए.वी. बालसुब्रहमण्यम, मद्रास
वैद्य रमेश म. नानल, मुंबई
वैद्य भास्कर वि. साठ्ये, मुंबई
वैद्य नरेन्द्र सो. भट्ट, मुंबई
हकीम सफदर नवाब, लखनऊ
वैद्य वी.बी. म्हैस्कर, वड़ौदरा

जीवनीय में छपने वाले लेखों को पाठकों के लिए उपयोगी बनाने हेतु हम सतत् संपादकीय प्रयास करते हैं। परंतु रोग निदान एवं चिकित्सा एक कुशल चिकित्सक का ही काम है। स्वस्थ जीवन हेतु आवश्यक जानकारी अवश्य जीवनीय से प्राप्त करें पर रोग-चिकित्सा कुशल चिकित्सक की ही देखरेख में करें।

— संपादक

जीवनीय चंदे की दरें

	व्यक्तिगत (रुपये)	संस्थागत (रुपये)
वार्षिक	५०	८०
द्वैवार्षिक	९०	१५०
त्रैवार्षिक	१३०	२२०
आजीवन	५००	८००

चंदा साधारण डाकखर्च सहित है पर यदि पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से मंगाना है तो उपरोक्त दरों में रु. ३५ और जोड़ कर भेजें। चंदे की रकम ड्राफ्ट या मनीआर्डर द्वारा ही 'जीवनीय सोसाइटी, लखनऊ' के नाम से भेजें। लोस्वापसंस के सदस्यों एवं स्वैच्छिक संस्थाओं को चंदे में १० प्रतिशत की छूट मिलेगी।

संपादकीय

जीवनीय के हर अंक को विशेषांक रुप में प्रस्तुत करने की कड़ी में हमने पाठकों की मांग पर इस अंक को अस्थि रोगों पर विशेष रूप से केन्द्रित किया है। आज के तथाकथित आधुनिक 'मशीनी' युग में मनुष्य को भी मशीन जैसा ही व्यवहार करने पर बाध्य किया जा रहा है। इसी कारण, विशेषकर हमारे नगरों में, लोग स्वस्थवृत्त या दिनचर्या संबंधी नियमों को लगभग भूल गए हैं। समय से सोना व जागकर नित्य कर्मों से समय से निवृत्त होकर व्यायाम करना जैसे आज की आधुनिक सभ्यता के विपरीत हो गया है। ऋतुओं व व्यक्ति की अपनी प्रकृति के अनुसार खान-पान व व्यवहार का महत्व ही नहीं रह गया है। प्रकृति पर विजय पाने की होड़ में मनुष्य भूल रहा है कि पंचमहाभूतों से बना यह शरीर प्रकृति से सामंजस्य टूटने पर स्वयं भी टूटने लगता है।

इस बात का जितना महत्व अस्थियों के स्वास्थ्य के लिए है उतना संभवतः अन्य बीमारियों के लिए नहीं होगा। तेज रफ्तार वाहनों पर ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर चलना, दुर्घटनाओं में हड्डी टूटना, बेतरतीब काम से रीढ़ की हड्डी पर दबाव देर तक झुककर काम करना, मुलायम बिस्तरों पर सोना, असंगत एवं विरुद्ध आहार का सेवन आदि सभी हड्डियों की समस्याओं को बढ़ाते हैं। इसलिए हड्डियों की समस्याओं से बचने के लिए भी आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी दिनचर्या तथा रहन-सहन के तरीके को अपने स्वास्थ्य व प्रकृति के साथ निसर्ग के सत्य को पहचान कर उसका भी ध्यान रखे। अधिकांश जोड़ों के या हड्डियों के अन्य कष्टों में व्यायाम व वातहर भोजन का विशेष महत्व होता है। आशा है हमारे प्रबुद्ध पाठक इन बातों का और अधिक ध्यान रखेंगे।

प्रस्तुत अंक में जहाँ एक ओर अस्थियों के रोगों में बच्चों के रिकेट्स व वयस्कों के रोगों सहित बुढ़ापे में जोड़ों के दर्द तक सभी अवस्थाओं के बारे में जानकारी दी है वहीं अस्थियों के बारे में आयुर्वेदीय मत ही नहीं वरन् प्राकृतिक चिकित्सा, होम्योपैथी व आधुनिक विज्ञान के साथ-साथ आसन व्यायामों का भी विवरण दिया है। सहज घरेलू जानकारी के लेखों में हड्डी जोड़ने के उपचारों से लेकर जोड़ों के दर्द व आस्टियोमेलाइटिस तक के बारे में महत्वपूर्ण अनुभव देश भर से प्रस्तुत किए गए हैं।

हमारा सदैव यह प्रयास रहता है कि विशेषांक के साथ-साथ अन्य विषय वस्तु भी अवश्य पूरी तरह प्रस्तुत की जाए। अतः शरद ऋतुचर्या के साथ-साथ चर्म रोगों में आहार, जुकाम व घरेलू जड़ी बूटियों से उपचार पर लेखों के साथ उपयोगी औषध व आहार द्रव्यों पर भी समुचित जानकारी दी जाए। हमारे सभी स्थायी स्तम्भ नियमित रूप से आपको ताजी जानकारी बराबर देते रहेंगे। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि हमारे पाठक न केवल जीवनीय में उपलब्ध जानकारी का लाभ उठाकर एक स्वस्थ समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान करते रहेंगे वरन् हमें अपने सुझावों की स्वस्थ परम्परा से 'जीवनीय' के स्वास्थ्य का भी उत्तरोत्तर अधिक ध्यान रखेंगे।

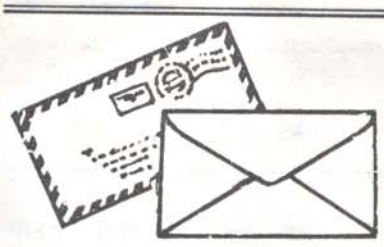

पाठकों के पत्र

प्रिय सम्पादक जी,

मैंने आपके द्वारा प्रकाशित जीवनीय पत्रिका का अंग्रेजी संस्करण पढ़ा। मुझे यह पत्रिका बहुत रोचक लगी। अब मैं इसका नियमित पाठक बनना चाहता हूँ। मैं अपनी इच्छा जल्दी से जल्दी पूरी करना चाहता हूँ। मुझे पूर्ण विवरण से अवगत कराएं।

श्री हरप्रीत सिंह, नई दिल्ली

मूझे आपकी पत्रिका पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इसमें प्रकाशित लेख अच्छे लगे। मैं एक सुझाव देना चाहता हूँ कि यदि इसमें प्राकृतिक चिकित्सा पर आधारित लेख भी सम्मिलित किए जाए तो पाठकों को अधिक रोचक लगेगी।

डा० ओ० पी० सिंह, शक्तिनगर

आपकी पत्रिका अच्छी लगी। इसमें प्रकाशित लेख रोचक लगे।मैं आपके अन्य प्रकाशनों की जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ। कृपया मुझे इसके पुराने अंकों के विषय में भी बताएं।

डा० प्रदीप बी० ओक, इन्दौर

मैं आयुर्वेद तथा देशी चिकित्सा पद्धति में विश्वास रखती हूँ। इसलिए मुझे आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पर प्रकाशित पत्रिकाएं पढ़ना रुचिकर लगता है। आपकी पत्रिका पढ़ने का अवसर मिला और अब मैं इससे बहुत प्रभावित हूँ। मैं इसमे अब तक के प्रकाशित अंकों के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहती हूँ।

संतोष चौधरी, उधमपुर

'जीवनीय' पत्रिका पढ़ने के बाद मुझे यह महसूस हो रहा है कि शायद इस युग में यह पत्रिका हमारे चरित्र निर्माण और गुणों के विकास में सहायक हो। इसलिए अब मैं इसका नियमित पाठक बन गया हूँ। यदि मेरी लम्बाई बढ़ाने की समस्या का समाधान इस पत्रिका के पास उपलब्ध हो तो कृपया मुझे उससे अवगत कराएं।

श्री जगन्नाथ यादव, फतेहपुर

मैं आपकी पत्रिका का नियमित पाठक हूँ और उसके नऐ स्वरूप से पूरी तरह संतुष्ट हूँ । यह इच्छा रखता हूँ कि 'जीवनीय' हमेशा और अच्छी सजधज से प्रकाशित होती रहे। यह मेरी शुभ कामना है।

डा० संतोष कुमार मालवीय, इलाहाबाद

मैं आपकी 'जीवनीय' एक लम्बे समय से पढ़ता चला आ रहा हूँ। इसमें प्रकाशित लेख बहुत रुचिकर होते हैं। आप विख्यात वैद्यों के रोगों से सम्बंधित सुझावों से अवगत कराते हैं। लेकिन अनियमितता किसी भी पत्रिका के लिए सराहनीय नहीं है। कृपया पत्रिका का नियमित प्रकाशन करने का प्रयास करिए।

श्री राजेन्द्र सिंह ठाकुर, इन्दौर

प्रकाशन की अनियमितता हमारी आदत नहीं है। जैसा कि आपको पहले सूचित किया जा चुका है प्रकाशन में इतना विलम्ब तकनीकी कारणों से हुआ। भविष्य में भी आशा है आप जैसे पाठकों की रुचि इस पत्रिका के लिए बनी रहेगी। हम तो इसका नियमित प्रकाशन करते ही रहेंगे।

सम्पादक

प्रिय सम्पादक

'जीवनीय' का उदर रोग विशेषांक पहली बार मुझे ग्वालियर में देखने को मिला। उदर रोग विषयक होने के कारण इस पत्रिका को विशेष रूप से खरीदा। पत्रिका में प्रकाशित 'पाचन संस्थान व नाभि' लेख पढ़ा लेकिन इसके पढ़ने के बाद एक बात समझ नहीं आई कि उसमें विभिन्न आसनों के बारे में विस्तृत जानकारी क्यों नहीं दी है। क्या सम्पादक मंडल को इन आसनों के बारे में जनता की जानकारी का आभास नहीं है? कोई भी रोगी इस प्रकार के लेख को पढ़कर लाभ नहीं उठा सकता है। मेरा सुझाव यह है कि इन आसनों के विषय में पूरी जानकारी दी जाए तभी हमारे ऐसे पाठकों को लाभ होगा।

श्रीराम देखमुख, ग्वालियर,

हम आपके सुझाव से प्रभावित हुए हैं और भविष्य में इस बात पर हमारा विशेषरूप से ध्यान रहेगा। यदि इस सम्बन्ध में आपको कोई अन्य जानकारी देनी हो तो आप हमे पत्र देकर अन्य पाठकों की भी सहायता कर सकते हैं। हम भी आपको संतुष्ट करने का प्रयास करेंगे।

सम्पादक

प्रिय संपादक

मैं आपके जीवनीय विशेषांकों की काफी पुरानी पाठक हूँ। आपने विभिन्न अंकों में स्त्री रोगों से संबंधित जानकारी व दवाएं बताई हैं मैने उनका उपयोग किया है। उनसे मुझे व मेरे परिवार को बहुत लाभ हुआ है। मैं जीवनीय परिवार को हार्दिक धन्यवाद देकर इसकी लगातार उन्नति की कामना करती हूँ।

श्रीमती बीना कपूर, कानपुर

संपादक महोदय,

मैंने आपकी जीवनीय द्वैमासिक पत्रिका पढ़ी। मुझे अंक बहुत उपयोगी लगा। आपकी यह पत्रिका पाठकों के लिए और रुचिकर बन सकती है यदि आप इसमें धूम्रपान, शराब और अन्य नशीली पदार्थों के सेवन से पीड़ित लोगों के लाभ के लिए कुछ बताएं।

श्रीमतीएन० एन० भादवी, महाराष्ट्र

यदि आप हमारी पत्रिका की नियमित पाठक है तो आपने यह देखा होगा कि पिछले कुछ अंकों में हम ने इन विषयों पर भी लेख प्रकाशित करे हैं वैसे आपके सुझाव से हम प्रसन्न है।

संपादक

आपके द्वारा अनेक वैद्यों के अनुभवों को संग्रह करके जीवनीय स्वास्थ्य पत्रिका का प्रकाशन पाठकों के लिए एक सराहनीय काम है। मुझे एक बात यह अच्छी लगी कि आपकी पत्रिका का हर अंक एक विशेषांक के रुप में प्रकाशित करते हैं। पिछले अंक में प्रकाशित नुस्खे मुझे बहुत पसन्द आए।मैं इस पत्रिका से लाभ उठाकर जीवन पर्यन्त स्वस्थ रहना चाहता हूँ।

श्री एस. के खन्ना, ग्वालियर,

इस अंक में

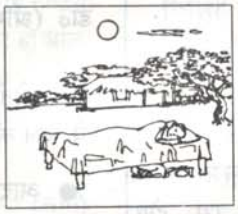

शरद ऋतु में स्वास्थ्य रक्षा ४
शरद ऋतुचर्या ५
आहार और हमारा स्वास्थ्य ६
चर्म रोगों में आहार ८
जुकाम कारण, लक्षण व निवारण १०
मधुमेह : व्याधि प्रतिबंधक उपाय ११
पर्यावरण एवं स्वास्थ्य : प्राथिमकताएं ४०
बुध ग्रह और ज्योतिष ५३
घरेलू जड़ी बूटियों से उपचार ६२

आवरण लेख

आस्टियोमेलाइटिस १५
अस्थि की संरचना १६
अस्थिवह स्रोतस १७
अस्थियों के रोग १९
अस्थिरोग-कारण व रोकथाम २१
अस्थिभंजन ज्वर २३
वयस्कों में अस्थिरोग २४
रिकेट्स- हाथ पैरों की कमजोरी २६
अस्थिरोग की प्राकृतिक चिकित्सा २८
पीठ दर्द : लाभकारी सुझाव ३०
जोड़ों का दर्द : सरल उपचार ३१
संधिशोध की होमियो चिकित्सा ३२
बुढ़ापे में जोड़ों का दर्द ३३
आथ्राराइटिस में होमियो उपचार ३४
फ्लूरोसिस ३६
टूटी हड्डी जोड़ने के सरल उपचार ३७
शिथिलीकरण व्यायाम ३८
संधिशोथ या गठिया ३९

औषध द्रव्य

गुणकारी अनार ४२
मेंहदी ४३
नींबू के औषधीय गुण ४४
बहूपयोगी बाँस ४५

आहार द्रव्य

प्रोटीन का सदुपयोग ४६
हरी पत्तियों का पोषक मान ४७
स्वादिष्ट टमाटर ४८
उपयोगी फल केला ४९

स्थायी स्तम्भ

साक्षात्कार १३
दादी माँ के नुस्खे ४१
ज्ञान कोष : अनुपान ५१
शब्द कोष ५१
नेत्ररोग ५२
पुस्तक समीक्षा : भारत वैद्यक ५४
पौष्टिक व्यंजन : जाड़ों में सूप ५५
सक्रिय योगदान : मानवोदय ५६
जीवनीय विज्ञान पहेली ५७
अनुसन्धान समाचार ५८
जीव विज्ञान समाचार ५९
पत्र पत्रिकाओं से ६०
मधुसंचय ६१
स्वयं बनाएं ६३

शरद् ऋतु में स्वास्थ्य

डा० (श्रीमती) शैलजा श्रीवास्तव, लखनऊ

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आयुर्वेद में ऋतुचर्या को काफी महत्व दिया गया है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट आदि ने अपने-अपने ग्रन्थों में ऋतुचर्या का सूक्ष्म विवेचन किया है। उनके ऋतुओं के विभाजन में थोड़ा सा अन्तर है, जिसका मुख्य कारण आचार्यों का भिन्न-भिन्न प्रदेश में रहना है। सामान्यतया एक वर्ष में छः ऋतुओं का वर्णन आता है- वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म। आचार्य चरक ने माघ + फागुन को शिशिर, चैत + वैशाख को वसन्त ज्येष्ठ + आषाढ़ को ग्रीष्म, श्रावण + भाद्रपद को वर्षा, आश्विन + कार्तिक को शरंद् और अगहन + पौष को हेमन्त ऋतु माना है। किन्तु आचार्य सुश्रुत ने शिशिर न मानकर प्रावृट् ऋतु माना है। कुछ लोग विन्ध्य के दक्षिण भाग में वर्षा अधिक होने से वर्षा ऋतु के प्रारम्भ का समय आषाढ़-श्रावण को प्रावृट् ऋतु मानते हैं और भाद्रपद (भादों + आश्विन) क्वार को वर्षा ऋतु मानते हैं।

मात्रा पूर्वक भोजन करने से बल, वर्ण, सुख एवं आयु की वृद्धि होती है। किन्तु इसके उचित सेवन के बाद भी व्यक्ति अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित होता रहता है। अतः जो व्यक्ति यह जानता है कि किस ऋतु में कैसा आहार लेना चाहिये वह व्यक्ति ऋतुओं के अनुसार उचित आहार का सेवन करने के कारण रोगी नहीं हो सकता है।

वर्ष की ऋतुओं को दो कालों में विभाजित किया गया है, आदान काल या उत्तरायण और विसर्ग काल या दक्षिणायन।

आदान काल : इस समय सूर्य अपने प्रखर तेज से संसार के स्नेह भाग का शोषण करता है, वायु तीव्र और रूक्ष होती है, अतः ये स्नेहांश के शोषण को और अधिक बढ़ा देती है। इस समय कटु, तिक्त और कषाय रस की वृद्धि होती है और व्यक्ति दुर्बल हो जाता है। इस काल के अन्तर्गत- शिशिर (माघ + फाल्गुन), बसन्त (चैत्र + बैशाख) और (ज्येष्ठ + आषाढ़) ऋतुयें आती हैं। यह काल अग्नि गुण प्रधान होता है। इन्हीं कालों के आधार पर रस, दोष, शारीरिक बल की उत्पत्ति वृद्धि और ह्रास निर्भर करता है।

विसर्ग कालः इस काल में जब सूर्य दक्षिणायन होता है तब भारतवर्ष सूर्य से अधिक दूर हो जाता है। फलस्वरूप चन्द्रमा का बल उस पर पूर्ण हो जाता है, तथा अपनी शीतलता जगत को प्रदान करता है। इसीलिए इसे सौम्य काल भी कहा जाता है।

इस काल के अन्तर्गत वर्षा (श्रावण + भाद्रपद),

शरद पूर्णिमा पर चाँदनी रात में घूमना ही ठीक है, पर ओस में सोना नहीं

शरद् (आश्विन + कार्तिक) और हेमन्त (मार्गशीष + पौष) ऋतुएं आती हैं। इस समय मधुर, अम्ल तथा लवण रसों की वृद्धि होती है तथा मनुष्य की शक्ति बढती है।

शरद् ऋतु में प्राकृतिक तथा शारीरिक स्थिति : यह ऋतु विसर्ग काल के अन्तर्गत आती है। इस काल में सूर्य की तेजी कम हो जाती है और चन्द्रमा शक्तिशाली हो जाता है। मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध रस तथा शरीर में बल की वृद्धि होने लगती है। शरद् ऋतु में पदार्थों में मध्यम स्नेह और प्राणियों में मध्यम बल की वृद्धि होती है। आदान-विसर्ग काल में मनुष्यों के बल की वृद्धि-ह्रास का क्रमः

- आदान के आदि काल (वर्षा) और अन्त काल (ग्रीष्म) में मनुष्यों का बल क्षीण हो जाता है।
- विसर्ग के मध्य काल (शरद्) और आदान के मध्यम काल (बसन्त) में मनुष्यों का बल मध्यम रहता है।
- विसर्ग के अन्त काल (हेमन्त) तथा आदान के आदि काल (शिशिर) में मनुष्य का बल उत्तम रहता है।

शरद् ऋतु में आहार-विहार : शरद् ऋतु में स्वभावतः सभी की जाठराग्नि मंद रहती है क्योंकि पित्त बढ़ा रहता है अतः अच्छी प्रकार भूख लगने पर ही मधुर, लघु, शीतल, वीर्य में शीतल, कुछ तिक्त रस युक्त एवं पित्त शामक आहार लेना चाहिए। मांसाहारी लोगों को, बटेर, गौरैया, हिरन, बारासिंघा, दुम्बा भेड़ और खरगोश का मांस खाना चाहिए। सामान्यतः सभी को चावल, जौ और गेहूँ का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में उत्पन्न हुए फूलों की माला, स्वच्छ वस्त्र और प्रदोष काल (रात्रि के प्रारम्भ) में चन्द्रमा की किरणों का सेवन लाभकारी होता है। आचार्य सुश्रुत के मतानुसार, कषाय, मधुर एवं तिक्त द्रव्यों तथा दुग्ध, गन्ने के रस के बने द्रव्य, मधु, शालि धान्य, मूंग एवं जांगल मांस का भोजन करना चाहिए। श्वेत फूलों की माला, और हल्के वस्त्र पहनने चाहिए। आचार्य चरक ने शरद् ऋतु में हंसोदक जल के सेवन को अत्युत्तम बताया है।

हंसोदक : दिन में सूर्य की किरणों से तप्त और रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से शीतल, निर्दोष, और अगस्त्य तारा के उदय होने के प्रभाव से विष रहित जल को "हंसोदक" कहा जाता है।

शरद् ऋतु में पित्त विकृत हो जाता है और रक्त की भी दुष्टि हो जाती है।

अतः पित्त को निकालने के लिये तिक्त घृत पान और विरेचन कराते हैं। कहा भी गया है कि *''विरेचनं पित्तहराणाम् ''*। पित्त नाश के लिए उत्तम उपाय विरेचन और उत्तम समय शरद् ऋतु ही माना गया है। पित्त नाश के लिये रक्त मोक्षण भी कराते हैं। शरद् काल में रक्त भी दुष्ट हो जाता है, अतः यदि तिक्त घृतपान से विरेचन कराने पर भी रक्त शुद्ध न हो तो रक्त मोक्षण कराना चाहिये।

शरद् ऋतु में अपथ्य : धूप, वसा (चर्बी) तैल, ओस, मांस–मछली, सुअर का मांस, क्षार, दही का सेवन, रात्रि जागरण–दिवास्वाप (दिन में सोना) और पूर्वी वायु सेवन नहीं करना चाहिए। इनके सेवन करने से अनेक प्रकार की व्याधियाँ होती हैं।

ऋतु सन्धिः – इस काल में (व्यतीत होने वाली ऋतु के अन्तिम ७ दिन और आने वाँली ऋतु के प्रारम्भ के ७ दिन) आहार–विहार का क्रम ऋतुओं के अनुसार परिवर्तित कर देना चाहिये।

दोषों का संचय– प्रकोप–प्रशमन

ऋतु	वात	पित्त	कफ
शिशिर माघ–फाल्गुन	प्रशमन	--	संचय
वसन्त चैत्र–वैशाख	प्रशमन	--	प्रकोप
ग्रीष्म ज्येष्ठ–आषाढ़	संचय	--	प्रशमन
वर्षा श्रावण–भाद्रपद	प्रकोप	संचय	संचय
शरद् आश्विन–कार्तिक	प्रशमन	प्रकोप	प्रकोप
हेमन्त मार्गशीर्ष–पौष	प्रकोप	प्रशमन	संचय

शरद ऋतुचर्या

डॉ० शरद ताँबे, पुणे

शरद ऋतु में सूर्य का तेज ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा कम होता है, चन्द्र का प्रभाव दूसरी किसी भी ऋतु से इस ऋतु में अधिक होता है। इस ऋतु में ही कई महत्वपूर्ण त्यौहार जैसे–दशहरा, शरद पूनम और दीपावली मनाये जाते हैं इस ऋतु में खट्टे, तीखे और चटपटे आहार का सेवन अधिक होता है। शरीर में पित्त का संचय होता है, यह पित्त इस ऋतु की गरमी में प्रकुपित होता है तथा विकार उत्पन्न करता है, यह ऋतु अनुरूप प्रकुपित पित्त की दोष–वृद्धि का कारण है, जब पित्त बिगड़ता है तो रक्त भी दूषित होता है, इस समय आंखों में जलन, पेट में जलन, मूत्रदाह, शरीर पर लाल चकत्ते, खुजली, फोड़ा आदि विकार उत्पन्न होने की संभावना रहती है, इस नैसर्गिक पित्त–वृद्धि को शांत करने के लिए आयुर्वेद में तिक्त घृत तथा विरेचन द्रव्य से पित्त को निकालने व रक्तमोक्षण करके दूषित रक्त और पित्त के प्रयोग को कम करने का विधान है, विरेचन सबसे सरल और सादा उपाय है, प्रकृति के अनुसार व्यक्ति के लिए विरेचन–द्रव्य का चयन कर हरीतकी, त्रिफला, अमलतास, मुनक्का, एरंड तेल, दूध, मुलेठी अथवा स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण का प्रयोग सफल होता है।

आहार : ऐसा होना चाहिये कि पित्त न बढ़े, इसके लिए कड़वा, मधुर और कषाय तथा पचने में हलका तथा ताजा भोजन लें, वह भी तब जब भूख अच्छी तरह लगे। गेहूँ, ज्वार, लाल चावल, मूँग, परवल, लौकी, गोभी, केला, अनार, आंवला, शक्कर, मधु एवं जंगली जानवरों के मांस का सेवन अनुमन्य हैं उष्ण या ठंडे एवं बासी पदार्थ का सेवन न करें। पेट भर भोजन कदापि न करें।

विहार : शरद ऋतु में शाम को स्नान करें और सफेद हल्के वस्त्र धारण करके चंदन, खस, कपूर लगायें रात में देर तक बाहर न रहें। दिन में धूप से बचें। इस ऋतु में दिन में सोना भी नहीं चाहिए, न ही मद्य का सेवन करना चाहिए, पूर्व दिशा से चलती वायु से बचना चाहिए।

इस ऋतु में दिन की धूप से गरम होने के बाद रात भर चंद्रकिरणों से हिम-शीतल जल की तारीफ नहीं हो सकती जिसे हंसोदक कहते हैं।

संक्षेप में कषाय, मधुर और कड़वे रस का हल्का सेवन, भूख लगने पर ही करें। विरेचन का प्रयोग करें। ऋतुचर्या का पालन करने से इस ऋतु में पित्त प्रकोप से स्वास्थ्य रक्षा में आप सफल हो सकते हैं।

चाँदनी में दूध–चावल की स्वादिष्ट खीर पकायी जाती है और चाँदनी में खूब ठण्डी होने के बाद बाँटी जाती है।

(गतांक से आगे)

आहार और हमारा स्वास्थ्य

वैद्य पी० सी० जैन, लखनऊ

शरीर की सभी क्रियाओं के सम्यक् परिचालन के लिए भोजन सभी पौष्टिक तत्वों से युक्त होना चाहिए। भोजन के शक्ति उत्पादक एवं शक्ति अनुत्पादक दो भेद हैं और प्रोटीन, वसा एवं कार्बोज शक्ति उत्पादक हैं। ऊर्जा उत्पत्ति के साथ ये आहार द्रव्य शरीर की वृद्धि, टूटे-फूटे अंगों एवं कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति एवं रोगों से लड़ने तथा रोग संक्रमण को रोककर शरीर में बलोत्पत्ति का कार्य भी करते हैं।

आयुर्वेद का दृष्टिकोण

प्रोटीन, वसा, कार्बोज का आयुर्वेद में नाम न होने पर भी इन द्रव्यों को उनके पांचभौतिक उत्पादकता से उनके गुण धर्मों का विवेचन किया गया है। प्रोटीन द्रव्य पार्थिव होते हैं और प्रोटीन के समान वे शरीर का बृंहण पुष्टि, क्षतिपूर्ति, शरीरावयवों एवं मन की दृढ़ता तथा बल की उत्पत्ति करने वाले होते हैं। आयुर्वेद के सामान्य सिद्धान्तानुसार दोषधातु मलों के क्षीण एवं क्षत युक्त होने पर समान गुण-धर्म-युक्त अथवा उसी अन्न पान का सेवन करना चाहिये। प्रोटीन युक्त द्रव्यों में दूध, मांस एवं अण्डा प्रमुख हैं। बाल, वृद्ध एवं रोग से कृश व्यक्तियों के लिए दूध सर्वोत्तम पथ्य कहा गया है। इसी प्रकार शरीर की वृद्धि, एवं क्षतिपूर्ति रुप बृंहण कार्य के लिए मांस सर्वोत्तम कहा है। निरामिषों के लिए मूंग, मसूर, मोठ, चना एवं शिम्बी धान्यों के यूष को लेने का विधान है। मांस, दूध एवं शिंबी धान्य वर्ग में इस प्रकार के तत्व होते हैं जो वृद्धि, क्षतिपूर्ति एवं बल वृद्धि के कार्य के साथ शरीर को रोगों से लड़ने एवं उन्हें उत्पन्न न होने देने की सामर्थ्य देता है।

वसा को आयुर्वेद में स्नेह कहा है और स्थावर (वानस्पतिज) तथा जांगम (प्राणिज) प्राप्ति के साथ घृत, तैल, वसा एवं मज्जा भेद किये हैं। इनमें घृत वसा (मांस में विद्यमान स्नेह) एवं मज्जा प्राणिज हैं और तिल, एरंड, करंज, निंब, बादाम, चिलगोजा, पिस्ता, अखरोट, मूँगफली, नारियल, राई, सरसों, कपास, अलसी, जैतून आदि का तैल वानस्पतिज है। स्नेह (वसा) आप्य एवं तैजस द्रव्य है। इस कारण शरीर में स्निग्ध, मृदुता, वर्ण एवं बल को उत्पन्न करते हैं तथा आयु को स्थिर करते हैं एवं उपचय कारक है। स्नेह की प्रशंसा करते हुए आचार्यों का कथन है कि जो नित्य स्नेहों का सेवन करते हैं उनकी जठराग्नि बलवान रहती है, कोष्ठ शुद्ध रहता है, धातु नवीन एवं इन्द्रियां दृढ़ रहती है, बल, वर्ण स्थिर रहते हैं और वृद्धावस्था का प्रभाव देर में होता है।

कार्बोज तैजस द्रव्य हैं जिनका अन्तर्भाव शर्करा द्रव्यों में किया जाता है। ये मधुर रस प्रधान द्रव्य है और रस रक्तादि धातुओं की वृद्धि एवं बल उत्पन्न करने वाले हैं।

ऊर्जा अनुत्पादक आहार

इस वर्ग के आहार द्रव्य यद्यपि ऊर्जा की उत्पत्ति नहीं करते तथापि इनकी अल्पता से शरीर की वृद्धि अवरुद्ध होकर विभिन्न विकारों की उत्पत्ति होती है। ये भी तीन हैं-

खनिज लवण- इनकी आवश्यकता इतनी अधिक है कि मनुष्य की मृत्यु ऊर्जा उत्पादक प्रोटीन, वसा, कार्बोजन लेने की अपेक्षा खनिज लवण न लेने से जल्दी हो जाती है और इसी कारण खनिज लवण मनुष्य शरीर में विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। हमारे शरीर का १/२५ भाग खनिज लवणों से निर्मित है जिनमें अस्थियाँ प्रमुख हैं। शरीर में खनिज लवण दो प्रकार के हैं-

क्षारोत्पादक- इनमें सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैगनीज, मैग्नीशियम, लौह जिन्क, तांबा, लीथियम, बेरियम प्रमुख हैं।

अम्लोत्पादक- इनमें फास्फोरस, गंधक, क्लोरीन, आयोडीन, सिलिकन, फ्लोरीन प्रमुख हैं।

ये दोनों प्रकार के खनिज लवण जब शरीर में उपयुक्त मात्रा में रहते हैं तभी रक्त, रक्तरस एवं ऊतकों की प्रतिक्रिया ठीक रहती है। मानव रक्त क्षारीय होता है परन्तु अम्लोत्पादक खनिज द्रव्यों के एवं ऊर्जा उत्पादक द्रव्यों के सेवन से अम्लता में वृद्धि होने से क्षारीयता कम हो जाती है और मनुष्य रोगग्रस्त हो जाता है। क्षारोत्पादक खनिज लवण वानस्पतिज द्रव्यों में पाये जाते हैं जिनमें हरे पत्ते वाली शाक, पालक, गोभी, आलू, शकरकन्द, करमकल्ला, मूली तथा मौसंबी, संतरा, नीबू, सेब, केला आदि प्रमुख हैं। अम्लोत्पादक भोज्यद्रव्यों में प्रोटीन वाले मांस, अण्डा, दाल, मेवे, अखरोट तथा गेहूँ, ज्वार, बाजरा मक्का आदि हैं। अतः आहार द्रव्यों में उर्जा उत्पादक द्रव्यों के साथ उनसे उत्पन्न अम्लता को कम करने के लिये खनिज लवण युक्त तरकारी, फलफूल, कन्दमूल भी उपयुक्त मात्रा में सेवन करना चाहिए।

रक्त की क्षारीय प्रतिक्रिया मांसपेशियों की क्रियाशीलता, शरीर में जल का समुचित संतुलन बनाये रखने के लिये, वृक्क के ठीक कार्य करने तथा मल निष्कासन एवं पाचक रसों के निर्माण के लिये खनिज लवणों का सेवन आवश्यक होता है। ऊर्जा उत्पत्ति एवं शरीर वृद्धि के साथ खनिज लवणों की पूर्ति के लिए आहार केवल दूध है इसी कारण प्राचीन ऋषि दूध एवं फलों द्वारा पूर्णाहार ग्रहण करते थे।

लौह- इसकी प्राप्ति मांस, अण्डा, मछली, दाल, छिलके युक्त अनाज, पालक, मेथी, हरे शाक, सलाद, प्याज, मूली, शलजम, सेम, विभिन्न फल एवं टमाटर आदि से होती है। दूध में लौह थोड़ी मात्रा में होता है परन्तु माता के दूध में उपस्थित लौह बच्चों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ण पूर्ति करता है। लौह का शोषण छोटी आँत से कुछ अम्ल प्रतिक्रिया में विटामिन सी एवं कैल्शियम की उपस्थिति से होता है। मांस में विद्यमान लौह की अपेक्षा शाकाहार में विद्यमान लौह का अवशोषण

अधिक होता है। अवशोषण के बाद यह यकृत प्लीहा तथा अस्थि मज्जा में संचित रहता है। व्यक्ति को प्रतिदिन १५–२० मि० ग्रा० लौह की आवश्यकता होती है। लौह प्रोटीन के साथ मिलकर हीमोग्लोबिन निर्माण करता है जो रक्त को लालिमा देता है। इसी हीमोग्लोबिन द्वारा फुफ्फुस से आक्सीज़न ग्रहण कर ऊतकों को भेजी जाती है जहाँ आहार द्रव्यों का आक्सीकरण होता है तथा ऊतकों में उत्पन्न कार्बन डाइ आक्साइड गैस हीमोग्लोबिन में अवशोषित होकर फुफ्फुस के जरिये श्वास द्वारा बाहर निकाली जाती है। शरीर में लौह की कमी से रक्ताल्पता हो जाती है जिससे व्यक्ति सुस्ती, सिरदर्द, धड़कन, मांस पेशियों की निर्बलता, श्वास, कानों में सनसनाहट एवं स्फूर्ति में कमी अनुभव करता है।

मैंगनीज : इसकी अत्यन्त अल्प मात्रा की आवश्यकता होती है जो लौह द्रव्य देने वाले पदार्थों से पूर्ति हो जाती है। इसका कार्य रक्त के हीमोग्लोबिन निर्माण में सहायता, ऊतकों में आक्सीकरण प्रक्रिया में सहायता, अनेक इन्जाइमों की उत्पत्ति, तथा शरीर में रोगप्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करना है।

तांबा : इसकी प्राप्ति समुद्री जल, दूध, रक्त, यकृत तथा हरी तरकारियों से होती है। जिन खाद्य द्रव्यों में लौह रहता है उनमें अल्प मात्रा में तांबा भी पाया जाता है। इसकी उपस्थिति भी हीमोग्लोबिन के निर्माण में सहायक होती है।

कैल्शियम : शरीर की अस्थियाँ प्रमुख रूप से कैल्शियम से ही निर्मित हैं। अतः प्रति किलो शरीर भार के अनुसार २० से २५ ग्राम कैल्शियम शरीर में विद्यमान रहता है। अस्थि एवं दांतों की ९९ प्रतिशत रचना कैल्शियम से होती है। इसके अतिरिक्त यह रक्तरस, मांस पेशियों तथा मस्तिष्क जल में भी पाया जाता है। १०० सी० सी० रक्त में यह ९–११ मिग्रा० रहता है। भोजन में इसकी प्राप्ति कठिन जल, अंडा, दूध, पनीर, हरी तरकारियां एवं मेवों से होती हैं। मांस एवं मछली में यह कम मात्रा में रहता है जबकि दूध एवं पनीर में इसकी मात्रा अधिक होती है। इसके छोटी आँत से अवशोषण में आँतों की अम्लीय प्रतिक्रिया, आन्त्र में मलपित्त एवं विटामिन डी की उपस्थिति तथा आहार में प्रोटीन की प्रचुरता एवं फास्फोरस की अल्पता मदद करती है। सबसे उत्तम अवशोषण दूध में पाए जाने वाले कैल्शियम का होता है। कैल्शियम अस्थि तथा दाँतों के निर्माण के साथ मस्तिष्क के कार्यों को ठीक रखता है और दुर्घटना आदि में रक्त को जमाकर रक्त स्राव रोकता है। यह हृदय की मांसपेशियों के संकुचन में, रक्तवाहिनियों की दीवाल को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा शरीर की मांसपेशियों के कार्य सम्पादन के लिए भी आवश्यक होता है। यह शरीर के विभिन्न एंजाइमों की क्रिया को भी तीव्र करता है। इसकी कमी से रिकेट या फक्क रोग, टिटेनी (सूखा रोग), अस्थि मृदुता आदि उत्पन्न होते हैं अतः आहार में १ ग्राम से १.५ ग्राम कैल्शियम प्रतिदिन लेना आवश्यक होता है।

फास्फोरस : फास्फोरस भी अस्थि एवं दाँतों के विकास के लिए आवश्यक है। लगभग १ ग्राम फास्फोरस की शरीर को प्रतिदिन आवश्यकता होती है। कैल्शियम वाले द्रव्यों में फास्फोरस भी रहता है इस तरह दूध, पनीर, चोकर युक्त आटे की रोटी, जौ, अण्डा, मांस, मछली दाल एवं मेवों से प्राप्त किया जा सकता है। चावल, मैदा, आलू, शकर कन्द में इसकी मात्रा कम रहती है। इसका अवशोषण भी छोटी आँत से होता है और आँतों की अम्लता एवं मलपित्त लवण तथा वसाम्ल की उपस्थिति में अवशोषण अधिक होता है। भोजन में उपस्थित कैल्शियम एवं फास्फोरस का निश्चित अनुपात दोनों के अवशोषण में मदद करता है। यदि आँतों में कैल्शियम अधिक होता है तब फास्फोरस का अवशोषण कम हो जाता है और यदि फास्फोरस की उपस्थिति अधिक हो तो कैल्शियम का अवशोषण कम होता है। इन दोनों का अनुपात विभिन्न आयु में अलग–अलग होता है। बाल्यावस्था में फास्फोरस से दुगुना कैल्शियम होना चाहिए जबकि युवावस्था में कैल्शियम फास्फोरस से आधा होना चाहिये। स्त्रियों में कैल्शियम की आवश्यकता अधिक होती है।

फास्फोरस का शरीर में उपयोग कोशिकाओं के निर्माण, अस्थि एवं दंत का निर्माण, वसा तथा कार्बोज के धातुपाक एवं सात्म्यीकरण, रक्त के जमने की क्रिया, रक्त की प्रतिक्रिया को स्थिर रखने में तथा मांसपेशियों के संकुचन से उत्पन्न रासायनिक प्रक्रिया को रखने के लिए आवश्यक होता है।

मैग्नीसियम : इसकी प्राप्ति मेवे, दाल, चोकर युक्त रोटी, मांस एवं हरी तरकारियों से होती है। इसकी प्रतिदिन की आवश्यकता अल्प होती है। अस्थि एवं दाँतों की शक्ति और कठोरता मैग्नीशियम पर निर्भर है इसके अतिरिक्त मांसपेशियों के संकुचन और इन्जाइम की क्रिया शीलता के लिए यह आवश्यक है। मैग्नीशियम की अधिकतर उपस्थिति कोशिकाओं में होती है। रक्त में यह अत्यल्प होता है जबकि कैल्शियम कोशिकाओं में अत्यल्प रहकर रक्त में अधिक मात्रा में रहता है।

नमक : इसमें सोडियम तथा क्लोरीन होता है। दोनों शरीर के आवश्यक घटक हैं। नमक की प्रतिदिन की आवश्यकता यद्यपि ५ से १० ग्राम है तथापि मनुष्य इससे अधिक ही नमक प्रतिदिन लेता है। वानस्पतिज द्रव्यों में सोडियम पाया जाता है परन्तु मांस में इसका अभाव रहता है। नमक सोडियम आयन के रूप में हृदय के संकुचन, कोशिका की क्रिया, ऐच्छिक, अनैच्छिक मांसपेशियों के संकुचन, एवं तंत्रिका की उत्तेजना के लिए आवश्यक है। सोडियम यौगिक के रूप में रक्त की क्षारीय प्रतिक्रिया को बनाये रखता है, मूत्र की प्रतिक्रिया को नियमित रखता है, शरीर के द्रवों का परिसरीय दबाव बनाये रखता है, इसकी कमी से शरीर में वसा का संचय नहीं होता, मांसपेशी एवं वृषण ग्रन्थि का अपचय एवं अस्थि विकास में अवरोध उत्पन्न होता है जबकि अधिकता से वृक्क, तथा रक्त वाहिनी नलिकाओं पर हानिकर प्रभाव होता है। क्लोरीन आमाशय में लवणाम्ल के निर्माण में सहायक है।

पोटेशियम : यह सभी प्राणिज एवं वानस्पतिक आहार द्रव्यों में पाया जाता है। वानस्पतिज द्रव्यों में यह अधिकता से पाया जाता है। शरीर में इसकी आवश्यकता प्रतिदिन लगभग ५ ग्राम होती है। सोडियम एवं पोटेशियम कोशिका रचना के प्रमुख तत्व हैं। सोडियम कोशिका के

शेष पृष्ठ ९ पर

चर्म रोगों में आहार

वैद्य रमेश नानल, मुम्बई

समुचित आहार विहार का सेवन न करने से विभिन्न प्रकार के रोग होते हैं खासकर चर्मरोग पर आहार विहार का प्रभाव सीधा पड़ता है। जैसे मछली, दही और तली हुई वस्तुओं के अधिक सेवन से विसर्प, खुजली, कुष्ठ आदि रोगों में विकार और अधिक हो जाता है। अतः त्वक् विकारों में पथ्य आहार का सेवन अत्यावश्यक है।

पथ्य

अनाजों में गेहूं, ज्वार, बाजरा, जौ, पुराना चावल, हरी सब्जियों में बथुआ, चिचिंडा, बाँस के प्ररोह, परवल, करेला, तुरई।

दालों में- मूंग, मसूर, अरहर, ज्वार।

मांस आहार में- बकरी, मुर्गा, तीतर।

फलों में- अंगूर, आम, अनार, खरबूजा।

दूध से बने पदार्थ- दूध, मक्खन, घी।

सलाद- ककड़ी, प्याज, गाजर, कच्ची हल्दी, अदरक।

अन्य- चिरौंजी, काला जीरा, जायफल, केसर।

अपथ्य

अनाजों में- नए धान्य, साबूदाना।

सब्जियों में- हरी पत्तीवाली सब्जियाँ, बैगन।

दालों में- उड़द।

मांस आहार में- मछली, सूखा या पुराना मांस, सुअर, बतख।

फलों में- केला, अनन्नास एवं अन्य अधिक खट्टे फल।

दूध से बने पदार्थ- दही, बासी या खट्टा मक्खन।

सलाद- लहसुन, मूली।

अन्य- तिल, गुड़, नमक।

आहार द्वारा चर्म रोगों का सरल उपचार

आयुर्वेद के अनुसार त्वक्विकारों को वात, पित्त एवं कफ तीनों दोषों के लक्षणानुसार परख कर उचित आहार का सेवन करना चाहिए।

वात प्रधान चर्म विकार

लक्षण- त्वचा के विकार ग्रस्त स्थान पर कालापन तथा शुष्कता अधिक होती है। सुई के चुभाने जैसा दर्द होता है। स्नेहन करने से आराम रहता है तथा रूक्षण से विकार में वृद्धि होती है।

पथ्य - आहार

- ताजा गर्म एवं स्निग्ध (चिकनाई वाले पदार्थ) भोजन।
- मट्ठे के साथ बकरी के मांस का सूप लेना चाहिए।
- त्वग्विकारों के लिए वर्णित पथ्य फलों का सेवन करें।
- गर्म दूध में शक्कर मिलाकर रात को सोते समय लें।

पित्त प्रधान चर्म विकार

लक्षण- विकार ग्रस्त स्थान गरम रहता है, जलन होती है एवं पीला या लालवर्ण का हो जाता है। शीतल एवं स्निग्ध पदार्थों से इसमें आराम मिलता है तथा गरम एवं शुष्क पदार्थों से विकार में वृद्धि होती है।

पथ्य - आहार

- हल्के गर्म एवं स्निग्ध पदार्थों का सेवन करना चाहिए।
- भोजन के साथ प्रचुर मात्रा में घी का भी सेवन करना चाहिए।
- मूंग के दाल के सूप के साथ घी या मक्खन मिलाकर सेवन करें।

कफ प्रधान चर्म रोग

लक्षण- विकारग्रस्त स्थान में काफी नरमी रहती है, पानी जैसा स्राव निकलता रहता है एवं वह स्थान काफी ठण्डा रहता है। खुजली होती रहती है। गर्म एवं शुष्क पदार्थों के सेवन से आराम मिलता है तथा शीतल एवं स्निग्ध पदार्थों से विकार में वृद्धि होती है।

पथ्य - आहार

- भोजन में घी के स्थान पर तेल का प्रयोग करना चाहिए।
- जौ, ज्वार अधिक मात्रा में बार-बार सेवन करते रहना चाहिए।
- करैला, अदरक, प्याज का भोजन में नियमित रूप से सेवन करते रहना चाहिए।
- मुर्गे के सूप में काली मिर्च, अदरक और जीरा मिलाकर भोजन के साथ लेना चाहिए।
- भोजन के साथ पानी कम मात्रा में लेना चाहिए। जहाँ तक हो सके गरम पानी ही पीना चाहिए।

कुछ लक्षणों के सरल उपचार

सुई के चुभने जैसी पीड़ा में

- दूध की मलाई का लेप लगाना चाहिए।
- नींबू के रस के साथ घी मिलाकर लगाना चाहिए।
- गरम चावल या बकरे के गरम कबाब से सेंकना चाहिए।

चर्म रोगों में आहार . . .

- नारियल का तेल गुनगुना गर्म करके लगाना चाहिए।
- गरम जल से सेंकना चाहिए।

जलन में

- दूध, मक्खन या घी बिना गरम किए लगाएं।
- ककड़ी को पीसकर दिन में ३-४ बार उसका लेप लगाएं।
- चिरौंजी को पीसकर उसमें थोड़ा घी मिलाकर लगाएं।

खुजली में

- अदरक के रस में काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर लगाएं।
- काला जीरा एवं कच्ची हल्दी का चूर्ण खुजली वाले स्थान पर मलना चाहिए।
- करेले को पीसकर लेप बनाकर गरमा लें एवं उससे सेंकाई करें।
- सहिजन के पत्तों को मलना चाहिए।
- नहाने एवं पीने के लिए गरम जल का प्रयोग करना चाहिए।

स्राव में

- करेले को पीसकर लेप बना लें एवं उसे गरमाकर सेंक करें।
- चने एवं काले जीरे का चूर्ण साबुन की जगह लगाकर नहाना चाहिए।
- हल्दी का चूर्ण विकारग्रस्त स्थान पर लगाना चाहिए।

बीटा कैरोटीन लाभकारी

वास्तव में वानस्पतिक पीले रंग में कैरोटीन होता है। यह सबसे अधिक गाजर में होता है इसीलिए गाजर को अंग्रेजी में कैरट कहते हैं। कैरोटीन से ही बीटा कैरोटीन बना है। यह हृदय रोग तथा कैन्सर से हमारा बचाव करता है और बुढ़ापे की रफ्तार को भी मंद करता है। इसका कुछ अंश हमारे शरीर में पहुंच कर विटामिन डी में परिवर्तित हो जाता है। विटामिन ई के साथ मिल कर यह त्वचा के कैन्सर से बचाता है। बीटा कैरोटीन, मोतियाबिंद को भी दूर रखता है। हमारे शरीर को प्रति दिन ६ से १४ मि० ग्राम तक बीटा कैरोटीन की जरुरत पड़ती है। एक औसत गाजर में लगभग ६ मि० ग्रा० बीटा कैरोटीन होता है। ध्यान रखें कि हर अच्छी चीज की तरह इसका भी जरुरत से अधिक सेवन नुकसान करता है और त्वचा पीली पड़ जाती है। पीले और गहरे हरे रंग वाली सब्जियां तथा फल बीटा कैरोटीन के उत्तम स्रोत हैं।

स्वास्थ्य आलोक '९९३

पृष्ठ ७ का शेष

आहार और हमारा स्वास्थ्य . . .

भीतर कम तथा बहिःकोषीय द्रव में अधिकता से रहता है जबकि पोटेशियम मुख्यतः कोशिका के भीतर पाया जाता है।

इसका कार्य कैल्शियम के विपरीत होता है। यह कोशिका की प्रतिक्रिया को अनुरक्षित करता है, हृदय के संकुचन को कम कर शिथिलन को बढ़ाता है, मांसपेशियों के संकुचन को कम करता है तथा तंत्रिका संस्थान की क्रिया का अनुरक्षण करता है।

अन्य खनिज लवणः अन्य खनिज लवणों की स्थिति शरीर में थोड़ी मात्रा में रहती है। इनमें आयोडीन थाइराइड ग्रन्थि के कार्य सम्पादन के लिए आवश्यक है। यह ग्रन्थि शरीर की आक्सीकरण प्रक्रिया को नियमित रखती है। आयोडीन जल, नमक, दूध, पनीर, मक्खन, काडलिवर आइल (मछली का तेल) एवं हरी तरकारियों से प्राप्त होता है। इसकी कमी से थाइराइड ठीक कार्य नहीं करती और गले में घेंघा रोग हो जाता है।

ब्रोमीन विशेषतः जान्तव आहार से प्राप्त होता है और कुछ इन्जाइमों की क्रिया को उत्तेजित करता है। सिलिकन तरकारियों और फलों के छिलकों में होता है। अल्प मात्रा में यह दांतों के बाह्य चमकदार आवरण को निर्मित करता है और मनुष्यों के फुफ्फुस, बाल, त्वचा में पाया जाता है। क्लोरीन, आहार एवं जल से प्राप्त होता है। अल्पमात्रा में यह अस्थि और दंत के विकास में सहायक है। जस्ता आहार द्रव्यों से प्राप्त होता है और अग्न्याशय में इंसुलिन के संचय में मदद करता है। इनके अतिरिक्त अल्प मात्रा में एल्युमिनियम, कोबाल्ट तथा सेलेनियम भी शरीर के अनुरक्षण के लिए आवश्यक है। गंधक प्रोटीन युक्त खाद्य द्रव्यों से प्राप्त होता है और शरीर के बाल, नख, उपास्थि, मलपित्त लवण, कुछ इंजाइम एवं हेपेरिन के निर्माण में सहायक है।

खनिज लवण हमारे शरीर में यद्यपि ऊर्जा की उत्पत्ति नहीं करते हमारे शरीर के लिए ऊर्जा उत्पादक आहार से अधिक उपयोगी एवं आवश्यक हैं। इनकी प्राप्ति शाकाहार द्रव्यों में दूध, चोकर युक्त आटा, हरे साग सब्जी, फल एवं मेवों से अधिक होती है। ये खनिज लवण जल में कुछ अंशों में घुलनशील होते हैं अतः शाक तरकारियों को काटने के बाद मल मलकर बारंबार धोने से खनिज लवण धोवन के जल के साथ निकल जाते हैं इसी से शाक तरकारी काटने छीलने के पूर्व ही धो लेना चाहिए, बाद में नहीं। इसी प्रकार इन्हें पानी में उबालकर पानी फेंक देने से भी खनिज लवण कम हो जाते हैं अतः शाक तरकारी एवं फल कुछ अंशों में सलाद की तरह बिना पकाये प्रयोग करने में अधिक खनिज लवणों की आपूर्ति होती है।

जुकाम– कारण, लक्षण एवं निवारण

बाल मुकुन्द शुक्ल, सोनभद्र

आधुनिक युग में हर मौसम में जुकाम होना साधारण बात है। शरीर के अन्दर विजातीय द्रव्य एकत्र होने के कारण यह रोग होता है। यदि शरीर पूर्णरूप से स्वस्थ है तथा अन्दर विजातीय द्रव्य नहीं है, तो जुकाम का संक्रमण नहीं होता है, ऐसा प्राकृतिक चिकित्सकों का मत है। जुकाम मात्र सर्दी लग जाने से या सर्द- गर्म मौसम या जलवायु परिवर्तन से ही नहीं होता है। जब शरीर में विजातीय द्रव्य इकट्ठा हो जाता है तो मौसम परिवर्तन होने पर यह रोग शीघ्र अपना स्थान शरीर में बना लेता है। जुकाम होने में मौसम परिवर्तन सहायक होता है पर शरीर में स्थित गंदगी ही इसका प्रमुख कारण है। अत्यधिक थकान, दुर्बलता, अनियमित खानपान, दिनचर्या व्यवस्थित न होना आदि भी जुकाम होने में सहायक बनते हैं।

कारण

जुकाम का वास्तविक कारण नियमित दिनचर्या का पालन न करना तथा अप्राकृतिक आहार–विहार है। शरीर का मल निष्कासन त्वचा, नाक, मूत्र द्वार एवं मलद्वार द्वारा होता है। किन्तु शरीर में जब गन्दगी अधिक एकत्र हो जाती है, तो उसको साफ करने के लिए शरीर विशेष प्रयास करता है, इसी विशेष प्रयास का एक परिणाम जुकाम भी है। गंदे स्थानों में रहना, गंदे जल का सेवन, प्रदूषण युक्त एवं औद्योगिक क्षेत्रों में निवास घरों में वायु एवं प्रकाश का उचित प्रवेश न होना, ये सब कारण जुकाम में सहायक हैं। जिस प्रकार हम अपने घरों को दशहरा, दीपावली या होली पर विशेष रूप से साफ करते हैं, वैसे ही शरीर में जब विशेष सफाई की आवश्यकता होती है, तभी रोगों का संक्रमण होता है। यदि प्रारम्भ में प्राकृतिक रीति से रोगों को समाप्त करने का प्रयास किया जाये तो शरीर की सफाई तो होगी ही इसके साथ ही साथ शरीर की रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता भी बढ़ जाती है।

लक्षण

गले में खराश, सिर में दर्द, छींक का आवेग अधिक होना नाक से पानी टपकना, मुख् का स्वाद बिगड़ना, गले में हलकी सूजन, भूख की कमी, सूंघने की शक्ति में कमी, हल्का ज्वर आदि जुकाम के लक्षण हैं। किसी भी कार्य में मन ही नहीं लगता है।

प्राकृतिक उपचार

जुकाम के उपचारों में प्राकृतिक उपचार ही सर्वश्रेष्ठ है। जुकाम होते ही भोजन बन्द कर देना चाहिये। उपवास करने से सभी रोगों का कारण तथा शरीर में स्थित विजातीय द्रव्य शरीर के विभिन्न मलमार्गों से बाहर निकल जाते हैं, इसलिये उपवास सभी रोगों का एकमात्र उपचार है। प्राकृतिक ढंग से खानपान एवं उचित आहार विहार करने से यह रोग धीरे–धीरे स्वयं ही समाप्त होने लगता है। दवा के माध्यम से इस रोग को कभी भी नहीं दबाना चाहिये अन्यथा निमोनिया, दमा तथा तपेदिक आदि रोग होने की संभावना होती है, क्योंकि दवा के कारण शरीर की गंदगी भीतर ही रहकर अनेक नये रोगों का कारण बनती है। जुकाम तो शरीर की सफाई का एक हितकारी एवं विशेष साधन है। जुकाम होने पर भोजन बन्द करके निम्न उपचारों में से किसी एक या दो को अपनाने से २–४ दिनों में जुकाम स्वयमेव चला जाता है:–

- कब्ज बिल्कुल न रहने दें। बड़ी आँत की सफाई डेढ़ किलो जल का एनिमा लेकर करनी चाहिए। एनिमा किसी जानकार व्यक्ति से सीखकर ही करना चाहिये।
- भोजन बन्द करके २–२ घण्टे पर १ गिलास सेंधा नमक मिला पानी पीना चाहिये। दो दिन में पूर्ण आराम हो जायेगा। जो लोग एनिमा न ले सकें वे निम्न साधारण विधि को अपनाकर लाभ प्राप्त कर सकते हैं :

आधा किलो पालक तथा शलजम, गाजर, टमाटर, धनिया की पत्ती सभी एक–एक पाव एवं अदरक ५० ग्राम। उक्त सभी वस्तुओं को साफ करके तथा काट करके २ किलो पानी में उबालना चाहिये। उबालने के बाद सभी वस्तुओं को मसलकर छान लें। छाने हुए सूप में आवश्यकतानुसार नींबू तथा पिसा एवं भुना हुआ जीरा और काला नमक मिलाकर २–२ घण्टे पर २–२ गिलास ४ या ५ बार पिएं, दिन भर भोजन न करें। इस प्रकार आँतें पूर्ण रूप से साफ हो जायेंगी। उक्त वस्तुओं में किसी एक या दो के न मिलने पर मौसमी हरी सब्जियों को मिला लें। प्रातः भ्रमण करें तथा प्रातःकाल ८ बजे सिर पर तौलिया रखकर धूप स्नान करें। इस विधि को अपनाने से दो दिन में निश्चित रूप से आराम हो जायेगा। १० से १५ मिनट तक धूप सेवन करें।

- जो व्यक्ति उक्त दोनों तरीकों को न अपना सकें वे चार नींबू लें तथा सेंधा नमक। दो–दो घण्टे पर २ गिलास गुनगुने पानी में एक नींबू तथा आवश्यकतानुसार नमक मिलाकर चार बार पिएं। मौसमी फलों का सेवन करें जिससे दुर्बलता न आने पाए। यह क्रिया दो दिन करने से पूर्ण आराम हो जाता है।
- शरीर से पर्याप्त पसीना निकलने से भी आराम होता है। इसके लिये रात को सोने से पूर्व स्टूल पर बैठकर १० से १५ मिनट तक एक बाल्टी गुनगुना पानी में पैर रखें। पानी घुटने तक रहे। पानी ठंडा होने पर उसमें गरम पानी मिलाते जायें। बीच–बीच में १–१ गिलास गुनगुना पानी पीते रहना चाहिये। ऊपर से कम्बल ओढ़ लें, पसीना आने पर उसे तैलिये से पोंछ लें फिर सो जाएं। इस प्रयोग से जुकाम में बहुत जल्द लाभ होता है।

शेष पृष्ठ १२ पर

मधुमेह की रोकथाम

डा० पी० यादव्या, अकोला

बहुचर्चित व्याधियों में मधुमेह व्याधि भी एक है। दिन प्रतिदिन इस व्याधि में वृद्धि दिखायी दे रही है। सुविधाओं का अधिक होना, व्यायामादि न करना और आहार के नियमों का पालन उचित रूप से न करने से धीरे–धीरे मधुमेह का उद्भव होता है। चोटों का जल्दी न भरना, अधिक मूत्र प्रवृत्ति या प्यास अधिक लगना, कमजोरी व आलस आदि लक्षणों के दिखाई देते ही मधुमेह की आशंका बन जाती है। ऐसे में रक्त और मूत्र का परीक्षण करा लेना आवश्यक होता है।

रक्तगत शर्करा का सामान्य मान- भोजन के पूर्व ८०–१२० मि० ग्रा० तथा भोजन के डेढ़ घण्टे पश्चात् १२०–१८० मि० ग्रा० होता है।

सामान्यतः एक बार मधुमेह हो जाने के बाद फिर आजीवन इस व्याधि से सम्पूर्ण छुटकारा नहीं मिल पाता है। बहुत से लोग नियमित पथ्य तथा आहार–विहार का पालन करके इस व्याधि को काफी नियंत्रित कर लेते हैं। जो मनुष्य इस व्याधि के होने के बाद अनियमित रूप से भोजन करते हैं उनको सुयोग्य चिकित्सा के बाद भी भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

आयुर्वेदीय निदान

अत्यधिक गरिष्ठ व चिकनाई वाले भोज्य पदार्थों का सेवन करना, अम्ल एवं लवण रसों का अधिक सेवन, नए अन्न का सेवन, अधिक सोना या दिन में सोना, अधिक देर तक गद्देदार बिस्तर पर बैठना, व्यायाम या किसी प्रकार का कोई परिश्रम न करना, किसी प्रकार का चिन्तन न करना, समय समय पर वमन और विरेचनादि कर्म न करना आदि कारणों से शरीर में कफ, पित्त दोषों तथा मांस व मेद धातुओं की वृद्धि हो जाती है।

ये बढ़े हुए कफ, पित्त दोष तथा मेद व मांस धातु वायु को आवृत करते हैं। आवृत हुआ वायु ओज को लेकर मूत्राशय में प्रवेश करके मधुमेह उत्पन्न करता है।

रस तथा दोष प्रभाव

रस	दोष प्रभाव	
	कोप	प्रशमन
मधुर, अम्ल, लवण	कफ	वात
कटु, तिक्त, कषाय	वात	कफ
कटु, अम्ल, लवण	पित्त	––
मधुर, तिक्त, कषाय	––	पित्त

आहार–विहार

आयुर्वेद में मधुमेह पीड़ितों के आहार–विहार विधि विशेष पर बहुत जोर दिया गया है। हर व्यक्ति यदि संतुलित आहार का सेवन करे व आहार नियमों का पालन नियमित रूप से करता रहे तो अपना स्वास्थ्य कायम रख सकता है क्योंकि अनियमित आहार-विहार के सेवन से ही अधिकतर व्याधियाँ होती हैं। आज विश्व में प्रचलित और मान्य विटामिन और कैलोरी युक्त आहार आयुर्वेद सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं। जो आहार सभी छः रसों (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय व तिक्त) से युक्त होता है वही संतुलित आहार कहलाता है तथा इस आहार को ही षड्सोपेत आहार कहते हैं। इस प्रकार का आहार ही आयुर्वेद के अनुसार शरीर को स्वस्थ और व्याधियों से मुक्त रखने में मदद करता है। यह षड्सोपेत आहार ही शरीर में दोषों के वृद्धि क्षय का संतुलन बनाए रखता है।

साधारणतया लोग मधुर, अम्ल, लवण तिक्त कटु रसों का सेवन अधिक करते हैं व कटुकषाय रसों का सेवन कम या बिल्कुल नहीं के बराबर, जिससे कफ व पित्त की वृद्धि होती है।

नये अन्न का अधिक सेवन (गेहूँ, ज्वार आदि), ताज़ा मद्य का सेवन, आस्यासुख (इच्छानुसार भोजन करते रहना जैसे हर समय मीठे पदार्थों या मसालेदार चटपटी पदार्थों का अधिक सेवन करना) निद्रासुख (गद्देदार कोमल बिस्तरों पर सोना या अधिक समय तक सोते रहना व सुबह देर से उठना), दिन में भी इच्छानुसार अधिक सोना, किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक श्रम न करना आदि कारणों से कफ, पित्त, दोष अधिक बढ़ जाते हैं।

आज के समाज में होटलों में पार्टियाँ देना या लेना एक फैशन समझा जाता है, जबकि होटलों के मसालेदार पदार्थों के अधिक सेवन से पाचन क्रिया असंतुलित हो जाती है। इस प्रकार के आहार के अधिक सेवन से पाचक रसोत्पादक ग्रन्थियाँ उत्प्रेरित हो जाती हैं। इन पाचक रस उत्पन्न करने वाली ग्रंथियों को बार–बार उत्प्रेरित करने से अग्न्याशय की कोशिकाओं की इन्सुलिन उत्पादन क्षमता कम होती जाती है। इसी के परिणामस्वरूप रोगी को भूख और प्यास अधिक लगती है। कफ बढ़ता है तथा शरीर में स्निग्धता, श्लक्ष्णता व सान्द्रता की भी वृद्धि होती है जिससे बीटा सेल्स के ऊपर एक स्तर सा बनता जाता है इस अवस्था में

इन्सुलिन उत्पन्न होते हुए भी पाचक रस के साथ मिल नहीं पाता है।

शारीरिक श्रम न करना

दफ्तरों में काम करने वाले और व्यापारी मनुष्य दिन भर एक ही जगह बैठक करने से किसी भी प्रकार का शारीरिक परिश्रम नहीं कर पाते हैं। दिन भर व्यस्त होने के कारण वे रात में देर से सोते हैं व सवेरे देर से उठते हैं। दिन भर बैठक करने से और प्रातःकाल कफ के समय में सोने से शरीर में कफ की वृद्धि होती है। यह भी मधुमेह का एक कारण है।

चिन्तन करना, विचार करना, अंदाज़ लगाना, ध्यान करना व संकल्प करना आदि कर्म मन के विषय हैं। हर मनुष्य मन के विषयों द्वारा चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को प्राप्त करने का प्रयास करता है, जो कि स्वाभाविक है। इसके विपरीत जो किसी प्रकार का मानसिक चिन्तन नहीं करते उनमें तमोगुण अधिक हो जाता है। तमोगुण अधिक होने से कफ दोष प्रकुपित होता है जो कि मधुमेह का कारण बन सकता है।

यथासमय शोधन क्रियाओं का न करना

ऋतुओं के अनुसार दोषों को ध्यान में रखते हुए शारीरिक शोधन करना आवश्यक है। शोधन क्रिया से न केवल आमाशय, पक्वाशय व मलाशय आदि महास्रोतों में संचित मलों का शोधन होता है परन्तु शरीर के विभिन्न कोषाणुओं जैसे सूक्ष्म स्रोतों में संचित मल का भी शोधन होता है।

ऋतुओं के अनुसार वर्षा ऋतु में बस्ति का, वसंत ऋतु में वमन का तथा शरद ऋतु में विरेचन कर्मों का स्वस्थ मनुष्य के लिए निर्देश किया गया है। इसके अलावा दोषों के अनुसार जो दोष बढ़े होते हैं उस दोष का शोधन करने से, उनसे होने वाली बीमारियों से बचाव हो सकता है।

इस प्रकार सूक्ष्म स्रोत से मल शुद्धि करने से सभी अंग प्रत्यंगों में और कोषाणुओं में एक प्रकार की उत्तेजना व क्रियाशीलता पैदा होती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के लिए संशोधन चिकित्सा करना आवश्यक है।

जिस प्रकार मशीनों को नियमित रूप से समय-समय पर साफ करना पड़ता है ठीक उसी प्रकार शरीर के लिए संशोधन आवश्यक है। संशोधन न करने से न केवल स्थूल स्रोतसों में परन्तु सूक्ष्म स्रोतसों में भी मल संचित होकर शरीर में जड़त्व पैदा करते हैं और इस जड़त्व के कारण कफ दोष में वृद्धि हो जाती है।

इस व्याधि से बचने के लिए ऊपर उल्लेख किये चार मधुमेह के कारणों से दूर रहना पड़ेगा। इस भयानक रोग से मुक्ति पाने के लिए और इस व्याधि का प्रतिबन्ध करने के लिए नीचे दिये हुए नियमों को पालन करना आवश्यक होता है।

- महीने में एक बार विरेचन करना चाहिए। इसके लिए एरण्ड तेल का प्रयोग कर सकते हैं।
- प्रतिदिन आवश्यकतानुसार शारीरिक श्रम करना चाहिए।
- भोजन के नियमों का पालन करना चाहिए।
- भोजन में तिक्त या कषाय रसों जैसे करेला, मेथी आदि का समावेश करना चाहिए।
- दही का सेवन न करें, बल्कि मट्ठे का प्रयोग कर सकते हैं।
- अधिक मसालेदार पदार्थों व मीठे पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।
- बासी व सड़े गले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।
- मानसिक संतुष्टि से मन का संतुलन बनाये रखना चाहिए।
- दिन में सोना नहीं चाहिए।

पृष्ठ १० का शेष . . .

जुकाम- कारण, लक्षण एवं निवारण

- पुराने जुकाम के रोगी ऊपर बताये गये उपचारों में से किसी एक का प्रयोग करते हुये इस प्रयोग को करें तो आशातीत लाभ मिलता है।
- खिड़कियाँ खोलकर सोना चाहिये। प्रातःकाल २ से ४ कि० मी० घूमना चाहिये। अत्यधिक गरम व ठंडा भोजन नहीं करना चाहिए तथा भोजन के साथ अत्यधिक शीतल जल नहीं पीना चाहिए। फ्रिज का पानी बिल्कुल न पियें क्योंकि आँतों में अधिक गर्मी होती है, एकाएक ज्यादा शीतल पानी पीने से आँतों में रोग होने की सम्भावना रहती है।
- गुनगुने पानी में साधारण नमक डालकर ४-५ बार गरारा करना चाहिये।

सावधानियाँ

- कब्ज़ बिल्कुल न रहे इसके लिये हरी तरकारियों तथा चोकर सहित आटे की रोटी का सेवन करें।
- हवा के तेज झोंके से बचें।
- जुकाम काल में एक हफ्ते तक पौष्टिक पदार्थ तथा मैदा घी, तेल या कब्ज़ वाले पदार्थ न खायें।
- शरीर के तापक्रम के जल से नहायें।
- खुले स्थान पर गहरी तथा लम्बी साँस लें।
- धूल भरे व गंदगी वाले क्षेत्रों में न रहें।

जुकामग्रस्त व्यक्ति को हवादार कक्ष में पूर्ण आराम करना चाहिये। थूक-बलगम तथा नाक के पानी को उचित स्थान पर फेंकना चाहिये, जिससे गन्दगी न बढ़े।

वैद्य एस० एम० अतीक, लखनऊ

६३ वर्षीय वै० सैय्यद मोहम्मद अतीक, लखनऊ के मूल निवासी हैं। इन्होंने लखनऊ के सेन्ट जोसफ स्कूल से १० वीं तक की शिक्षा प्राप्त की एवं क्रिश्चियन कालेज से इण्टर मीडिएट पास करने के बाद लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् १९५१ में बी० काम० की उपाधि प्राप्त की। ये सन् १९५३ में प्रशिक्षण एवं रोजगार निदेशालय में सेवारत हुए। इनको बचपन से ही स्वदेशी चिकित्सा पद्धति में रुचि रही है। इनके श्वसुर जी बहुत मशहूर सिविल सर्जन थे जिनके साथ इन्होंने काफी कुछ सीखा। कैंसर के बारे में भी विस्तृत जानकारी उन्हीं से प्राप्त की। सन् १९६० में इनकी माँ की कैंसर से मृत्यु हो गयी, उनके इलाज के किये गए सारे प्रयास निरर्थक साबित हुए। इस घटना ने उन्हें कैंसर की औषधि खोजने की प्रेरणा दी। १६ वर्ष के कठिन परिश्रम के उपरान्त उन्हें सफलता मिली। वैद्य अतीक जी कैंसर के साथ-साथ दमा, गठिया, बवासीर व प्रमेह का भी इलाज करते हैं। सन् १९८६ में सबसे पहले इन्होंने श्री बी० डी० शर्मा जी (तत्कालीन निदेशक, प्रशिक्षण एवं रोजगार निदेशालय) की साली का इलाज किया, जिनके गर्भाशय में कैंसर था। वे चार महीनों में ठीक हो गयीं। उसके बाद सन् १९८८ में वैद्य विशारद एवं आयुर्वेद रत्न की उपाधि प्राप्त करके इन्होंने अपना पंजीकरण करवाया। अतीक जी की ख्याति धीरे-धीरे फैलने लगी व आज उनके पास देश के कोने कोने से मरीज आते हैं।

प्रश्न : आप कैंसर का निदान कैसे करते है?

उत्तर : मेरे पास वही मरीज आते हैं जिन्हें सारी आधुनिक जांच पड़ताल के बाद कैंसर ग्रस्त घोषित कर दिया जाता है।

प्रश्न : आप अपनी दवाओं की परख कहाँ और कैसे करते हैं?

उत्तर : हम अपनी दवाइयों की परख अपने आप ही करते हैं, इनके लिए आवश्यक यन्त्र आदि भी मेरे पास हैं।

प्रश्न : मरीजों में आप अपनी दवा का असर कैसे परखते हैं?

उत्तर : पहली बार दवा देकर ३ दिन तक मरीज को अपनी निगरानी में रखते हैं। यदि मरीज की स्थिति में सुधार होता है व भूख बढ़ती है तो इसका अर्थ यह है कि दवा से लाभ हो रहा है एवं कैंसर की वृद्धि में कमी आ चुकी है। यदि भूख नहीं बढ़ती या स्थिति में सुधार न हो तो दवा की मात्रा बढ़ा देते हैं।

प्रश्न : आप अपनी दवा कैसे देते हैं?

उत्तर : छोटे बतासे को तोड़कर उसके निचले हिस्से को छोटा व गोल बना लेते हैं ताकि बताशे का नुकीला भाग गले में न फंसे। उसी पर दवा के दो बूंद टपकाकर उसे मुंह में रखकर पानी से निगल लिया जाता है।

प्रश्न : अपनी दवा के बारे में कुछ बताएं?

उत्तर : मेरी दवा १२ वनौषधियों का मिश्रित तैलीय उत्पाद है इसको बनाने में १०-१२ दिन लगते हैं।

प्रश्न : विभिन्न प्रकार के कैंसरों में आप एक ही दवा का इस्तेमाल करते हैं या अलग अलग?

उत्तर : हर प्रकार के कैंसर में हम एक ही दवा का प्रयोग करते हैं।

प्रश्न : आपको मरीज के इलाज में कितना समय लगता है?

उत्तर : कम से कम डेंढ़ महीना और ज्यादा से ज्यादा छः महीने में कैंसर ठीक होने लगता है। यह मरीज की व्याधिक्षमता पर निर्भर करता है।

प्रश्न : इलाज के दौरान पथ्य आदि का पालन करना होता है या नहीं?

उत्तर : इलाज के दौरान अरहर की दाल, मिर्च-मसालेदार भोजन, खट्टी व बादी वस्तुएं (जैसे बैंगन, उर्द, घुईयां आदि) बिल्कुल कम कर दिया जाता है। मरीज को हल्के आहार का ही सेवन कराते हैं।

प्रश्न : आपको सबसे ज्यादा संतुष्टि कब होती है?

उत्तर : मरीज के ठीक होने पर।

प्रश्न : आप आजकल के डाक्टरों के शिक्षण के बारे में क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : बस इतना जरूर कहेंगे कि छात्रों को पाठ्यक्रम के आधार पर सिर्फ सैद्धान्तिक शिक्षण पर जोर न देकर प्रायोगिक ज्ञान कराने पर भी ध्यान देना चाहिए।

प्रश्न : भविष्य में क्या करना चाहेंगे?

उत्तरः मैंने अपनी दवा परीक्षण के लिए केन्द्रीय औषधि अनुसंधान में दी है। शुरुआती परीक्षणों में कोई हानिकारक तत्व नहीं मिले हैं। मैं यही चाहूँगा कि मेरी औषिधिको मान्यता प्रदान की जाए और इससे ज्यादा से ज्यादा लोग लाभान्वित हों। मान्यता मिलने पर मैं इसके घटकों को आम जनता को बता दूँगा।

प्रश्न : कैंसर से बचाव कैसे हो सकता है?

उत्तर : यदि आप चार रोटी खाने वाले हों तो चार की जगह साढ़े तीन रोटी ही खाएं एवं खाने के ५ मिनट बाद दो गिलास पानी पी लें इससे कैंसर से बचाव हो सकता है।

शेष पृष्ठ २२ पर

अतिथि सम्पादकीय

डा. डी. पी. सिंह, लखनऊ

आज हम आधुनिक प्रौद्योगिकी के युग में जी रहे हैं। प्रतिदिन इलाज के नए-नए तरीके सामने आ रहे हैं। अक्सर हमें 'सही डाक्टर' या 'अच्छा डाक्टर' ढूंढने में कठिनाई होती है। एक आदर्श चिकित्सक को कुशल, अनुभवी, सहानुभूति रखने के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर आसानी से उपलब्ध भी होना चाहिए।

हर रोग, व्याधि या स्वास्थ्य समस्या के समाधान के लिए 'सर्वोत्तम चिकित्सक' से परामर्श ही आवश्यक नहीं होता है। साधारणतया, रोजमर्रा की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सक या 'पारिवारिक चिकित्सक' के होने से बड़ी सुविधा रहती है। इसके लिए होम्योपैथ, वैद्य, हकीम या आधुनिक चिकित्सक किसी से भी आवश्यकतानुसार परामर्श की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। चिकित्सक व रोगी के संबंधों में एक विशेष आत्मीयता व अंतरंगता आवश्यक होती है। हमें ऐसे डाक्टर की तलाश रहती है जिस पर हम पूर्ण विश्वास करके सुखी रह सकें।

डाक्टर शब्द की उत्पत्ति लैटिन के मूल शब्द 'डोकेयर' से हुई है जिसका अर्थ शिक्षा देना है। अतः एक अच्छे डाक्टर को सदैव अपना ज्ञान आपके साथ बाँटने को प्रस्तुत होना चाहिए। रोगी को भी अपने शरीर, स्वास्थ्य व समस्याओं के बारे में अपने डाक्टर से सरल भाषा में समझने का प्रयास करना चाहिए। यदि रोगी के मन में कुछ प्रश्न हों तो डाक्टर से उनके समाधान के लिए पूरा प्रयास करना चाहिए। अपने डाक्टर से कैसा भी प्रश्न पूछने में संकोच नहीं करना चाहिए चाहे वह कितना भी मूर्खतापूर्ण क्यों न लग रहा हो। आपका पारिवारिक चिकित्सक इसमें सदैव आपकी सहायता करेगा व आवश्यकता पड़ने पर किसी प्रबुद्ध या विशेष चिकित्सक से आपको परामर्श के लिए सुझाएगा। हाँ, विशेष चिकित्सकों की सलाह महंगी भी हो सकती है। वे तरह-तरह के परीक्षणों के ए सुझाव दे सकते हैं क्योंकि उन्हें तो रोग का निदान व उपचार 'निश्चित' ही करना है।

हाँ, एक बात और ध्यान देने योग्य है कि चिकित्सक भी ऐसे रोगी की प्रशंसा करते हैं जो नियमित हों और चिकित्सक की सेवाओं का महत्व समझें। अतः स्वस्थ हो जाने पर रोगी को चाहिए की चिकित्सक का धन्यवाद अवश्य करे। अंत में फिर एक बार याद दिला दूँ कि किसी भी व्यक्ति के लिए कोई एक 'सही चिकित्सक' या 'आदर्श चिकित्सक' नहीं हो सकता क्योंकि जैसे हर रोगी का अपना व्यक्तित्व होता है उसी प्रकार डाक्टर का भी। अतः यदि आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो अपने लिए 'उचित' चिकित्सक को ढूंढ़ने का प्रयास तो अवश्य करें।

अगले अंक के प्रमुख आकर्षण

घर-घर का रोग : स्त्रियों में कमर दर्द

श्वेत प्रदर- एक आम स्त्री रोग

सामान्य स्तन्य रोग निवारण एवं स्तन्य सौंदर्य

स्त्रियों में हिस्टीरिया रोग

महिलाएं और एड्स

बच्चों को स्तनपान कराइए व अपना सौंदर्य बढ़ाइए

तथा अन्य सभी स्थाई स्तम्भों के साथ

ओस्टिओमेलाइटिस– एक अनुभव

वैद्य– संजय रा० डाखोरे, कशेले

बात २ वर्ष पुरानी दिसम्बर १९९० की है। अकेडमी में कार्यरत एक ग्रामीण युवक की कूल्हे की हड्डी टूट गयी थी। डॉ० ने ऑपरेशन करके स्टील का रॉड लगवा दिया था। कुछ सप्ताह तक अस्पताल में रखने के बाद टाँके सूखने पर रोगी को घर लौटने की भी अनुमति मिल गई थी। करीब २० टाँके पड़े थे। युवक कैलीपर्स की सहायता से चलने की कोशिश करता रहा। दो तीन महीनों तक कुछ परेशानी रही, बाद में लगा सब ठीक हो गया। पर युवक पैर में कुछ अस्वाभाविकता अनुभव करता था। ६ महीनों तक वह उसकी उपेक्षा करता रहा। मगर बाद में जहाँ टाँके लगवाये थे वहाँ ऊपर के २–३ टाँकों पर गांठ सी बन गई और वेदना तीव्र होने लगी।

फिर से रोगी को अस्पताल में दाखिल किया गया। डॉ० ने दोबारा ऑपरेशन करके स्टील रॉड निकाल लिया तथा निदान करके रोगी को एंटीबायोटिक देना शुरू किया मगर रोगी में उसकी एलर्जी होने से उसे आयुर्वेदिक इलाज़ करने की सलाह देकर भेज दिया।

आयुर्वेदिक इलाज़ के लिये रोगी को अकेडमी के दवाखाने में दाखिल किया गया। कुछ दिनों के उपरान्त ऊपर के २–३ टाँके छोड़कर सभी टाँके सूख गये। प्रतिदिन ड्रेसिंग होती रही साथ ही खाने के लिये आयुर्वेदिक दवा चलती रही पर घाव सूखता ही नहीं था। घाव को देखने से लगता था कि नासूर की तरह टाँकों के नीचे नलिकाकार ४–५ अंगुल फैला हुआ है। हर वक्त ड्रेसिंग के साथ पट्टी बदलते समय मवाद निकलता था। रोगी को कुछ भी फायदा नहीं हुआ।

रोगी के पैर में वेदना होने लगी तथा ज्वर भी रहने लगा। पकने से बचने और मवाद कम करने के लिये गंधक रसायन दो–दो गोली सुबह–शाम देना शुरू किया गया। ड्रेसिंग के लिये एक स्वनिर्मित तैल (देखिये– जीवनीय–दंतसुरक्षा अंक मरहम पट्टी तेल) का इस्तेमाल शुरू किया। खाने में लहसुन का उपयोग ज्यादा से ज्यादा करने की सलाह रोगी को दी गयी। २० दिन तक यह प्रयोग चला किन्तु रोगी को कुछ भी राहत नहीं मिली।

कर्जत तालुका में अस्थिभग्न चिकित्सा करने वाले वैदु परम्परागत पद्धति से अस्थिभग्न चिकित्सा करते हैं। गाय, बैल, बकरी, मुर्गी आदि के पैरों की हड्डी जोड़ने का काम यह लोग सहजता से करते हैं। उसी प्रकार आदमियों की नलकास्थि भग्न चिकित्सा भी अच्छी तरह से करते हैं। हड्डी जोड़ने के लिये वनस्पतियों की जड़ से तैयार प्लास्टर लगवाते हैं तथा उस पर कपास लगवाकर बाँस की छीलन से बनी चटाई कसकर बांध देते हैं। प्लास्टर १ दिन में एकदम कड़ा हो जाता है। २–३ हफ्ते के अन्दर रोगी चंगा हो जाता है। इस केस में वैदु का विचार क्या है यह बात समझने के लिये रोगी को वैदु को दिखाने का निर्णय लिया गया।

वैदु ने रोगी की स्थिति देखकर असमर्थता व्यक्त की। मगर प्लास्टर का कड़ा होने का गुण देखकर कम से कम मवाद निकलने के लिये इससे फायदा होगा ऐसा समझाकर प्लास्टर लगाने के लिये वैदु को राजी किया। बेमन से वैदु इसके लिये राजी हो गए। जंगल में जाकर उसने ताजा डिस्कोरिया की जड़ जिसका स्थानिक नाम पाष्टी है लाकर घिसकर लेप बनाया तथा नासूर का मुख छोड़कर कूल्हे के ऊपर गोलाकार लगा दिया और उसके ऊपर कपास की परत बिछाकर हल्के कपड़े से बांध दिया।

लेप लगाने के थोड़ी ही देर में रोगी को उस स्थान पर असह्य खुजली शुरू हो गयी। करीबन १० मिनट बाद खुजली कम हो गई, लगाया हुआ लेप धीरे धीरे कड़ा होने लगा। दूसरे दिन तक लेप एकदम कड़ा हो गया तथा नासूर के मुंह से बहुत मवाद निकला। तीसरे दिन फिर से लेप लगा दिया। अबकी मवाद पहले दिन से बहुत ही कम निकला। बाद में घाव में तैल भरकर ड्रेसिंग करते रहे। १९ दिन बाद मवाद निकलना एकदम बंद होकर व्रण सूखने लगा। खाने के लिए आयुर्वेदिक औषध गंधक रसायन जारी रखा गया।

हर रोज पैरों को हल्का व्यायाम कराते रहे। बला तैल से हल्की मालिश होती रही। २ महीने पश्चात रोगी एकदम स्वस्थ होकर कैलीपर्स की सहायता के बिना अपने पैरों से चलने फिरने योग्य हो गया।

वैद्य अतीक जी द्वारा दमा के लिए बताया गया एक सरल उपचार

मंगरैल के ८० दाने तवे पर भूनकर पीस लें एवं १०० ग्राम शहद में फेंटकर रख लें। इस मिश्रण का रोज प्रातः निहार मुंह व रात को सोते समय एक एक चम्मच सेवन करने से दो महीने में दमा का शमन हो जाता है।

अस्थि की रचना एवं महत्व

वैद्य पूर्ण चन्द्र जैन, लखनऊ

अस्थि शरीर का सबसे कठिन भाग है। यह दृढ़ एवं कठिन संयोजी ऊतक से निर्मित है। अस्थि से निर्मित शरीर रचना को कंकाल कहते हैं। इसके द्वारा ही शरीर का आकार प्रकार एवं लम्बाई बनी रहती है। अस्थियों के ऊपर मांसपेशियाँ चिपकी रहती हैं। उनका एक सिरा अस्थि से उद्गम लेता है और दूसरा सिरा अस्थि पर निवेश करता है। अस्थि के प्रान्त भाग से ही अस्थि का निर्माण होता है। दो अस्थियों के प्रान्त मिलकर सन्धि बनाते हैं जिससे शरीर विभिन्न क्रिया करने में समर्थ होता है। संधियों को आधार अस्थियों से ही प्राप्त होता है।

इन अस्थियों को चार भागों में विभाजित किया गया है।

नलकास्थि– यह हाथ तथा पैर में पायी जाती हैं और लीवर का कार्य कर गतिशील संधि निर्मित करती है।

कपालास्थि– यह चपटी होती हैं तथा सिर एवं वक्ष में पायी जाती है। इनके द्वारा शिरोगुहा एवं वक्षोगुहा के भीतर पाये जाने वाले विशिष्ट प्राणधारक अंगों की रक्षाकी जाती है।

वलयास्थि– यह भी वक्षस्थल में हृदय आदि अवयवों की रक्षा करती है।

अनियमिताकार अस्थि– यह हस्त, पाद, तथा पीठ में पायी जाती है।

अस्थि की रचना

अस्थि दृढ़ संयोजी ऊतक से निर्मित है अस्थि की प्रारम्भिक इकाई को अस्थि कोष कहते हैं ये तीन प्रकार के हैं– अस्थिप्रसू, अस्थिकोषिका, अस्थिभंजक इसी के द्वारा अस्थि को नया आकार दिया जाता है।

अस्थि का विकास

अस्थि विशिष्ट प्रकार के संयोजी ऊतक हैं इनका प्रारम्भिक विकास तरुणास्थि अथवा कला के रूप में होता है। गर्भ में इनका प्रारम्भ मध्य जनन स्तर से होता है और गर्भ में ६ सप्ताह के उपरान्त अस्थि का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। अस्थि उत्पादक कोषों की क्रिया से इन पर कैल्शियम एवं फास्फोरस लवण निक्षिप्त होने लगते हैं जो हड्डियों को दृढ़ता एवं कठोरता प्रदान करते हैं। लंबी अस्थियों के दोनों सिरे एवं मध्य भाग पृथक–पृथक विकसित होते हैं और बाद में वे आपस में जुड़ जाते हैं। अस्थियों के मध्य में विकास के परिणामस्वरूप मज्जा नलिका निर्मित होती हैं जिसमें मज्जा भरी रहती है। चपटी अस्थियों, नलकास्थि के गोल प्रान्त, कशेरुक के गात्र एवं पर्शुका में रहने वाली मज्जा को रक्त मज्जा कहते हैं। इसके द्वारा रक्त के लाल कणों का निर्माण होता है इससे इनकी मज्जा में अपरिपक्व लालकण विभिन्न अवस्थाओं में तथा कणयुक्त श्वेत कण पाये जाते हैं। शेष हड्डियों में मज्जा नलिका में पीत मज्जा होती है वृद्धावस्था में कुछ अस्थियों को छोड़कर सभी में पीतमज्जा हो जाती है इससे रक्त की कमी हो जाती है। अस्थियों के ऊपर एक आवरण होता है जिसे अस्थिच्छद कहते हैं। इसी के माध्यम से रक्त वाहिनियां एवं लसीका वाहिनी अस्थियों में पोषक सामग्री ले जाती है।

अस्थि संख्या– मानव शरीर में २०६ अस्थियाँ होती हैं ।

मुख एवं सिर की अस्थियाँ =	२२
पीठ के कशेरुक	२६
कंठ	१
वक्ष	२५
ऊर्ध्व शाखा	६४
अधो शाखा	६२
कान	६

अस्थि विकास में विटामिन ए तथा डी का अत्यन्त महत्व है। इसकी कमी से बच्चों में रिकेट्स तथा गर्भवती स्त्रियों में अस्थि मृदुता हो जाती है। विटामिन सी भी अस्थि विकास के लिए आवश्यक है। पीयूषग्रन्थि, अधिवृक्क प्रान्तस्था एवं उपावटु ग्रन्थि (एड्रीनल) के हार्मोन भी अस्थि विकास एवं वृद्धि में सहायक हैं। पीयूष ग्रन्थि के हार्मोन की कमी से अस्थियों की वृद्धि अवरुद्ध हो बच्चा बौना रह जाता है। अधिवृक्क प्रान्तस्था अस्थि के अन्तर्वर्धीकांड के संयोग में तथा उपावटु का हार्मोन कैल्शियम एवं फास्फोरस के निक्षेप में कार्य करता है।

अस्थि का संगठन

अस्थि में ७५ प्रतिशत घन भाग एवं २५ प्रतिशत जल होता है। घन द्रव्यों में कार्बनिक द्रव्य प्रोटीन ३० प्रतिशत तथा अकार्बनिक द्रव्य कैल्शियम फास्फोरस, मैग्नीशयम, पोटेशियम , सोडियम आदि ४५ प्रतिशत होते हैं। कैल्शियम एवं फास्फोरस अस्थियों के प्रमुख लवण हैं। आहार में कैल्शियम प्रमुख रूप से दूध, पनीर तथा गेहूँ के आटे से प्राप्त होता है। फास्फोरस भी दूध से एवं कुछ मात्रा में मांसाहार से प्राप्त होता है। ये दोनों आँत से शोषित होकर प्रोटीन से मिलकर अस्थि बनाने में सहायता करते हैं। अस्थि का आधा भाग कैल्शियम लवण के रूप में रहता है। इनकी सान्द्रता प्रतिलोमानुपाती है जिससे कैल्शियम की कमी पर फास्फेट एवं फास्फेट की कमी पर कैल्शियम की मात्रा एवं अवशोषण में वृद्धि हो जाती है।

शेष पृष्ठ १८ पर

अस्थिवह स्रोतस

वैद्य विलास एम० नानल, पुणे

स्रोतस मानव शरीर के महत्वपूर्ण भाग हैं। संपूर्ण शरीर में स्रोतसों का जाल फैला होता है। स्रोतस विभिन्न आकार-प्रकार के हैं और विविध कार्य करते हैं। ये शरीर में पंचमहाभूतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके बिना कोई पाँचभौतिक भावविशेष या द्रव्य नहीं बनता। अतः शरीर में धातुओं की उत्पत्ति, वृद्धि और क्षय के लिए स्रोतस ही कारण हैं।

स्रोतस एक खोखली संरचना है जो दीवारों से घिरी है और जिसमें रस धातुओं का दोतरफा, अर्थात् स्रोतस के बाहर से स्रोतस के अंदर और अंदर से बाहर की ओर बहाव हो पाता है। यही विशेषता स्रोतस को धमनी, शिरा, नाड़ी, मर्म आदि से अलग करती है।

स्रोतस की परिभाषा

'स्रवणात् स्रोतांसि' अर्थात् स्रवण या स्राव के कारण है। इस संरचना से स्राव संभव हो पाता है। रस धातु कोष्ठ से भित्ति के द्वारा बाहर रिसती है और फिर भित्तियों के द्वारा पुनः कोष्ठ में प्रवाहित होती है। इसे रसधातु का द्विपार्श्वक बहाव कहते हैं।

स्रोतस की सामान्य विशेषता अवकाश या स्थान है अतः आकाश महाभूत स्रोतस के निर्माण के लिए उत्तरदायी है। अन्य महाभूत स्रोतस की दीवारों का निर्माण करते हैं। प्रत्येक स्रोतस रंग, बनावट और सामान्य रूप से देखने में उस विशिष्ट धातु जैसा होता है जिससे वह संबद्ध होता है।

सम्पूर्ण शरीर में स्रोतसों का जाल फैला है अतः ये असंख्य हैं। फिर भी स्रोतसों के तेरह प्रमुख प्रकार हैं, प्राणवह, उदकवह, और अन्नवह तथा सात धातुओं के लिए सात स्रोतस-रसवह, रक्तवह, मांसवह, मेदोवह, अस्थिवह, मज्जावह तथा शुक्रवह- और अंत में तीन मलों के लिए पुरीषवह, मूत्रवह और स्वेदवह।

इन तेरह स्रोतसों को उनके कार्यों के आधार पर मोटे तौर से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्राण, उदक और अन्नवह स्रोतस शरीर की आवश्यकतानुसार पर्यावरण से प्राण, पानी और आहार ग्रहण करते हैं। अतः ये आदान कर्म करते हैं। पुरीष, मूत्र और स्वेद शरीर के तीन मल हैं जो शरीर की समस्त शरीर क्रियात्मक प्रक्रियाओं के अंत में उत्पन्न होते हैं जिन्हें शरीर से बाहर निकालना पड़ता है जो अन्यथा शरीर में संचित होकर उसे हानि पहुँचा सकते हैं। मूत्र, पुरीष और स्वेदवह स्रोतस इस प्रकार विसर्जन कार्य करते हैं। शेष सात स्रोतस जो सप्तधातुओं के लिए हैं आदान और विसर्ग कालों में संतुलन स्थापित करते हैं। ये देह धारण के लिए उत्तरदायी हैं तथा विक्षेप का कार्य करते हैं।

जिस प्रकार पर्यावरण में चंद्र, सूर्य और पवन क्रमशः विसर्ग, आदान और विक्षेप करते हैं उसी प्रकार शरीर में स्रोतस ये कार्य करते हैं। पाचन के समय सर्वप्रथम रस धातु बनती है, जो द्रव होती है और इसमें वे सभी पोषक तत्व होते हैं जो शेष धातुओं की सामान्य क्रिया के लिए आवश्यक है। रसधातु संपूर्ण शरीर में भ्रमण करती है और समस्त अन्य धातुओं का पोषण करती है जिससे वे स्वस्थ बनी रहती हैं। जब रसधातु किसी खास स्रोतस में पहुँचती है तो वह स्रोतस आवश्यक तत्वों को ग्रहण कर धात्वग्नि की सहायता से उस धातु का निर्माण कर लेता है।

अस्थिवह स्रोतस : अस्थि धातु से कंकाल बनता है यह समस्त स्नायुओं पेशियों और कंडरा आदि को संबद्ध रखती है। अस्थीनि देहधारणं मज्ज्ञः पुष्टिं च।अस्थिवह स्रोतस का मूल मेद धातु और जघन है।

जघन कमर के नीचे का क्षेत्र है जहां आकृति में बेतरतीब और मोटी श्रोणि अस्थि रहती है। शरीर के इस क्षेत्र में अस्थि का घनत्व अधिकतम होता है। इसीलिए जघन को मूल स्थान कहा गया है। इसके अतिरिक्त शरीर की लंबी हड्डियों-नलकास्थियों में मज्जा धातु होती है जबकि छोटी विषमाकृति हड्डियों (अण्वस्थि) में सरक्त मेद होता है। श्रोणि क्षेत्र की हड्डियाँ विषमाकृति होते हुए भी नलकास्थि नहीं है इसलिए उनमें सरक्त भेद होता है। अतः मेद धातु को द्वितीय मूल स्थान माना गया है।

अस्थिवह स्रोतस और उसकी क्रिया को समझने के लिए अस्थि धातु की संरचना और क्रिया को समझना आवश्यक है। अस्थि धातु शरीर को सहारा देती है। मर्म स्थलों का संरक्षण करती है, विविध संधियों का निर्माण कर विविध गतिविधियाँ संभव बनाती है और पेशियों, स्नायुओं, वाहिकाओं आदि को संलग्न करती है। वात दोष का आश्रय भी अस्थि है। रस, रक्त में पित्त और रस-मांस, मेदा, मज्जा धातुओं में कफ का निवास है। किन्तु वात का एकमात्र आश्रय अस्थि है। एक में दोष होने से दूसरे की क्रिया में विकार उत्पन्न हो जाता है। वात दोष में वृद्धि होने से अस्थि क्षय होता है।

अस्थि धातु प्रकृति से पार्थिव है अर्थात् अस्थि में पृथ्वी महाभूत की प्रधानता है जो कि अत्यन्त सघन, और स्थिर है। अस्थिवह स्रोतस और अस्थि धातु शरीर में एक अन्य द्रव्य पुरीष से जुड़े होते हैं। पुरीष भी पार्थिव है। अतः एक के दूषित होने से दूसरा भी दूषित हो जाता है। इसीलिए जिन व्यक्तियों को अस्थि धातु से संबद्ध व्याधि होती है जैसे संधिगत वात, उन्हें अनिवार्य रूप से कब्ज़ आदि की शिकायत भी होती है और दूसरी ओर कब्ज़ रहने पर प्रायः कटिशूल और संधिशूल आदि हो जाता है।

अस्थि धातु कतिपय कारणों से विशेष रूप से दूषित हो जाती है।

व्यायामादतिसंक्षोभादस्थ्नामतिविघट्टनात्।

अस्थिवाहीनि दुष्यन्ति वातलानां च सेवनात्।

व्यायाम की अति से वायु दूषित होती है। इससे शरीर में रुक्षता, लघुता तथा खरता और विशदता की वृद्धि होती है। अस्थि धातु अत्यन्त स्निग्ध मेद और मांस से घिरी होती है और उसके अंदर स्निग्ध मज्जा धातु होती है। व्यायाम से इन सब में कमी हो जाती है जो शरीर के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। इसलिए व्यायाम करने वाले को अपने आहार में स्निग्ध द्रव्यों– घी, मक्खन, दूध और मधुर रस का समावेश करना चाहिए।

कोई भी व्यायाम या शरीर पर घूसों की चोट जो जोड़ों और हड्डियों पर अत्यधिक बल डालती हैं, हड्डियों और जोड़ों को कमजोर व क्षतिग्रस्त करती है।

किसी हड् डी के टूटने से स्थायी कमजोरी का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। अस्थि एक घनी धातु होने से ठीक होने में बहुत समय लेती है। यदि इस अवधि में वातकर आहार–विहार का त्याग नहीं किया गया तो अस्थि भंग ठीक नहीं हो पाता। कमजोरी के कारण हड् डी के पुनः टूटने की आशंका रहती है।

वात प्रकोपक आहार–विहार अंतिम हेतु है। वात को दूषित करने वाले रस हैं, कटु, तिक्त और कषाय। अतः मिर्च, करेले और सुपाड़ी की अति से, जो सभी कषाय रस होने से वातकारक हेतु है वात दोष दूषित हो जाता है।

इसी प्रकार उद्दालक, मुद्ग, मसूर, आढ़की, कलाय, निष्पाव, सूखी हरी सब्जियाँ, आहार में स्निग्ध द्रव्यों की कमी और रूक्ष गुणात्मक आहार सेवन से वात का प्रकोप होता है। इसी प्रकार दौड़ने, चलने, तैरने, रात में जागने, उपवास आदि से भी वात दूषित होता है। इन हेतुओं से अंततः अस्थि धातु पर प्रभाव पड़ता है और अस्थिक्षय होता है। यदि ये हेतु दीर्घकाल तक बने रहते हैं तो अपना प्रभाव दिखाते हैं विशेष रुप से वृद्धावस्था में या चालीस की उम्र के बाद और संधिशूल, अस्थिशूल, केशपतन, दंतपतंन (केश और दांत अस्थि की उपधातु हैं) तथा पुरोषवह स्रोतस के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अस्थिवह स्रोतस की विकृति के उपचार में स्नेहन की महत्वपूर्ण भूमिका है। क्योंकि जब मांस, मेद और मज्जा जो कि स्निग्ध धातु हैं शरीर में कम हो जाते हैं तो उसका सीधा प्रभाव अस्थि पर पड़ता है। मांस क्षय होने पर संधिशूल होता है। मेदक्षय होने पर कमर में सुन्नता और मज्जा क्षय में हड् डी में खोखलापन होता है।

अतः स्नेहन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके साथ स्वेदन किया जाता है। आहार में स्निग्ध, उष्ण, मधुर, अम्ल और लवण पदार्थों का समावेश किया जाना चाहिए। वातदोष की प्रमुख चिकित्सा बस्ति कर्म है। अस्थिक्षय में स्निग्ध उष्ण बस्ति का प्रयोग किया जाता है। साथ ही आहार में स्निग्ध मांस का समावेश होना चाहिए।

अस्थिवह स्रोतोदुष्टि की यह सामान्य चिकित्सा है। लेकिन प्रायः एक दाँत के ऊपर दूसरा आता है, ह ड्डी बढ़ती है, दाँत में दर्द, हड्डियों में तीव्र वेदना, केश और दाँत का बदरंग होना तथा जोड़ों के विविध रोग अस्थिवह स्रोतोदुष्टि के अन्तर्गत आते हैं। सभी उपचार वातदोष के शमन का प्रयास करते हैं।

पृष्ठ १६ का शेष

कैल्शियम एवं फास्फोरस धातुपाक उपावटु के हार्मोन की क्रिया पर निर्भर है जिससे उसकी कमी पर टिटेनी वातविकार हो जाता है।

हड्डियों के कार्य

अस्थियां निम्न कार्य करती हैं–

- शरीर को आधार व आकृति देती हैं, संधियों से गति कराती हैं तथा शरीर के मर्मांगों की रक्षा करती हैं।
- इसकी लाल मज्जा रक्त–कणों का निर्माण करती है।
- अस्थियां कैल्शियम, फास्फोरस लवणों के संचय स्थान हैं तथा लवणों का संतुलन बनाये रखती हैं।
- धातुज विषों को अस्थि में निक्षेप कर शरीर में निर्विषीकरण का कार्य करती हैं।
- शरीर में मांसपेशी, संधि, सिरा, धमनी स्नायु आदि को आलंबन प्रदान करती हैं।
- नासागुहा, मुख, तालु का निर्माण कर, सांस लेने, आहार ग्रहण करने तथा वाणी की उत्पत्ति में सहायक होती हैं।
- उत्तोलक का कार्य कर संधियों से विभिन्न गति कार्य कराती हैं।
- मध्यकर्ण की अस्थियाँ ध्वनि तरंगों का संवहन करती हैं।

अस्थियों का महत्व

अस्थियाँ शरीर के आकार, दृढ़ता एवं उसके खड़े होने, और लंबाई के आधार है। आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर वात, कफ एवं पित्त श्लेष्मा इन तीन दोषों की साम्यता रुपी आरोग्य पर निर्भर है। साम्य विघटन रोगोत्पत्ति होती है। वय की दृष्टि से बाल्यावस्था में कफ दोष के प्राबल्य से बल की उत्पत्ति, उत्साह एवं कार्यक्षमता बनी रहती है तथा वृद्धावस्था में वात के आधिक्य से नियंत्रण में शिथिलता और उपचयात्मक परिवर्तन होते हैं।

अस्थि में वात दोष का आधिक्य रहता है इससे वृद्धावस्था में शिथिलता, नियंत्रण की कमी, अस्थि विकार, आमवात, संधिवात, कंप्न, अस्थिभंग आदि विकारों की प्रचुरता देखी जाती है जिसे उचित आहार विहार द्वारा वात का शमन कर विकारों में कमी की जा सकती है।

अस्थियों के रोग

वैद्य अयोध्या प्रसाद अंचल, गया

हमारा शरीर अस्थियों और उपस्थियों से बने जिस ढाँचे पर टिका है उसे अस्थि–कंकाल कहते हैं। इसी अस्थि–कंकाल के सहारे यह चलता–फिरता, उठता–बैठता और डोलता है। इस अस्थि–कंकाल के दो मुख्य भाग होते हैं–

- केन्द्रीय भाग जो कपाल और धड़ की अस्थियों से निर्मित होता है।
- बाहर का परिधीय भाग जो हाथ–पैरों की अस्थियों से बना होता है।

अस्थि– कंकाल का केन्द्रीय भाग शरीर को न केवल रूप एवं आकृति प्रदान करता है बल्कि जीवन के लिए अत्यावश्यक अंगों–जैसे मस्तिष्क, फेफड़े तथा हृदय की रक्षा भी करता है। परिधीय भाग में स्थित हाथ–पैरों की अस्थियाँ सभी प्रकार की गतियों में सहायक होती हैं।

जहाँ पर दो या दो से अधिक अस्थियाँ एक दूसरे से मिलती हैं उन्हें जोड़ या संधि कहते हैं। ये संधियाँ दो प्रकार की होती हैं– *चल संधि*–जिनके सहारे शरीर तथा उसके अंगों को आगे–पीछे, दायें–बायें झुकाया, मोड़ा या घुमाया जा सकता है– जैसे उंगलियाँ, कलाई, कोहनी, कंधे, टखने, घुटने, कूल्हे आदि के जोड़। *अचल संधि*–जहाँ पर दो या दो से अधिक अस्थियाँ आपस में इस प्रकार जुड़ जाती हैं कि फिर वे हिल–डुल नहीं सकतीं, जैसे–कपालास्थियों की संधि।

शरीर को गति प्रदान करने के अलावा अस्थियां और भी अनेक महत्वपूर्ण काम करती हैं– जैसे अस्थि–मज्जा में रक्त–कोशिकाओं का निर्माण होता है तथा अस्थि के ऊतक कैल्शियम के भण्डार का काम करते हैं।

अस्थि–कंकाल की उपास्थियों एवं अस्थियों का निर्माण अस्थि–कोशिकाओं से होता है। अस्थियों के निर्माण की प्रक्रिया एक लम्बी एवं जटिल प्रक्रिया है। इसका आरम्भ गर्भावस्था के शुरू के ही सप्ताहों में हो जाता है और जन्म के समय बालक में कम से कम पांच अस्थिभवन–केन्द्र वर्तमान होते हैं। अस्थियों के बढ़ने–जुड़ने एवं आकार ग्रहण करने की क्रिया परिपक्वावस्था के अन्त तक चलती रहती है। कुछ परिवर्तन तो प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था में भी होते हैं।

अस्थियों के रोग

अस्थियों के रोग अपने विकास–क्रम की अवधि में कभी भी किसी को हो सकते हैं। इनकी उत्पत्ति में अनेक कारकों का योगदान रहता है जिनमें कुपोषण, विटामिन "डी" तथा कैल्शियम की कमी की प्रमुख भूमिका होती है। अंगों का अति उपयोग, दुरुपयोग एवं दुर्घटनाएं भी अनेक अस्थि रोगों को जन्म देने का कारण बन जाती हैं।

अस्थि रोगों को मोटे तौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है– प्रथम जो किसी भी उम्र में हो सकते हैं– जैसे– मोच, अस्थिच्युत (हड्डी का अपनी जगह से हट जाना) तथा अस्थिभंग (हड्डी का टूट जाना)। अस्थि भंग की घटनाएं व्यापक रूप से होती रहती हैं। चूँकि अधिकांश अस्थियों का बाहरी भाग प्रायः भंगुर होता है अतः उतनी ही आसानी से यदि उनको अपनी जगह पर ठीक से बैठाकर स्थिर कर दिया जाए, जुड़ भी जाती हैं। वृद्धावस्था में अनेक कारणों से इनका जुड़ना कठिन हो जाता है।

विशेष अवस्था के अस्थि रोगों का परिचय संक्षेप में नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

जन्मजात अस्थिरोग

ये रोग बालक में जन्मकाल में ही वर्तमान होते हैं। इनमें प्रमुख हैं–

उपास्थि–अविकसन तथा अपूर्ण अस्थिजननः उपास्थि–अविकसन (एचोण्ड्रोप्लेसिया) में सर और धड़ की अस्थियाँ तो सामान्य आकार में विकसित होती हैं पर हाथ–पैरों की हड्डियाँ छोटी और मोटी होती हैं। इसीलिए हाथ–पैर लम्बाई में कम और बेडौल प्रतीत होते हैं जैसाकि प्रायः बौनों में देखने को मिलता है। अपूर्ण अस्थिजनन (आस्टियोजेनेसिस इम्परफेक्टा) की स्थिति में शिशु की अस्थियाँ असामान्य रूप से पतली और भंगुर होती हैं। थोड़ा भी जोर या दबाव पड़ने पर आसानी से टूट जाती हैं।

जन्म के बाद उत्पन्न अस्थि रोगः इस काल में उत्पन्न होने वाले रोग प्रायः प्रभावित अस्थि में कभी–कभी मामूली और कभी गम्भीर पीड़ा के साथ शुरू होते हैं। रोगी प्रभावित स्थान का आसानी से स्पर्श नहीं करने देता। प्रायः वहाँ पर सूजन और लाली के लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। तेज पीड़ा की हालत में ज्वर, अरुचि, सरदर्द, अनिद्रा आदि के भी लक्षण प्रकट हो सकते हैं।

शैशवावस्था में व्यापक रूप से पाये जाने वाले अस्थिरोगों में रिकेट्स और "पोलियो" प्रमुख हैं जिनका यदि समय रहते उचित उपचार न किया जाए तो वे बच्चे को जिन्दगी भर के लिए विकलांग बना दे सकते हैं। रिकेट्स से पीड़ित बच्चे की अस्थियाँ मृदु हो जाती हैं। फलतः वे मुड़, झुक कर वक्र रूप धारण कर तरह तरह की आंगिक विकृतियाँ पैदा कर देती हैं। बच्चे की वृद्धि एवं विकास अवरुद्ध हो जाते हैं। इसे एक कुपोषणजन्य व्याधि माना जाता है। गर्भावस्था में माता के भोजन में तथा

जन्म के बाद बच्चे को दिए जाने वाले खाद्य पदार्थों में कैल्शियम, फास्फोरस तथा विटामिन–डी की कमी को इसका प्रमुख कारण माना जाता है। पोलियो एक संक्रामक व्याधि है जो एक विशेष प्रकार के विषाणु के शरीर में प्रवेश कर जाने पर उत्पन्न होती है। इससे सुरक्षा के लिए पोलियो–निरोधक टीका ही एक सहज उपाय है।

बाल्यावस्था में मुख्य रूप से पाया जाने वाला अस्थि रोग अस्थिमज्जा शोथ (*आस्टियोमेलायटिस*) है जो सामान्यतया *स्टैफाइलोकाकस* या किसी अन्य पूयजनक जीवाणु के संक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। इसका आक्रमण हाथ या पैर की किसी एक ही हड्डी पर होता है। सर्वप्रथम संक्रमित अस्थि के ऊपर की त्वचा और नीचे के ऊतकों में सूजन और लाली आ जाती है। प्रभावित क्षेत्र में तीव्र पीड़ा होती है। फिर कंपकपी के साथ बुखार, बेचैनी और पसीना आने लगता है। कभी कभी तो रोगी सन्यास की अवस्था में चला जाता है। यदि समय रहते उपचार न किया जाए तो रोगी में अस्थिक्षय (ट्यूबरकुलोसिस आफ द बोन) के लक्षण उत्पन्न हो जा सकते हैं।

अस्थिक्षय शरीर की किसी भी अस्थि को प्रभावित कर सकता है। यदि समय पर इसका उपचार न किया जाए तो शरीर के जिस अंग की जो अस्थि नष्ट हो जाती है वहाँ स्थायी विकृति उत्पन्न हो जाती है। जैसे– रीढ़ की हड्डियों में उत्पन्न अस्थिक्षय कुब्जता को जन्म देने का कारण बन सकता है या कमर को सदा के लिए झुका दे सकता है।

किशोरावस्था में पीयूष – ग्रन्थि (पिट्यूट्रीग्लैण्ड) की अति सक्रियता की अवस्था में अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न वृद्धि–अन्तः स्रावी हड्डियों की लम्बाई को असामान्य रूप से बढ़ाकर महाकायता को जन्म दे सकती है। व्यक्ति असामान्य रूप से लम्बा हो जाता है। यदि वयः– सन्धि या यौवनोद्गम काल के बाद भी इस अन्तः स्राव की बाढ़ न रुकी तो व्यक्ति के कपाल और जबड़ों की अस्थियों में भी विरूपता उत्पन्न हो सकती है। विशेष रूप से मस्तक और चिबुक (ठुड्डी) विकृत रूप धारण कर ले सकते हैं। ठीक इसी के विपरीत पीयूष–ग्रन्थि की हीन सक्रियता लघुकायता या बौनेपन को जन्म देने का कारण बनती है।

प्रायः ४० वर्ष की अवस्था के बाद, अस्थिशोथ और अस्थि–अर्बुद (बोन ट्यूमर) के रोगी अधिक देखने को मिलते हैं। एक विशेष प्रकार के अस्थिशोथ में जिसे पैगेट्स–डिजीज भी कहते हैं, एक या एक से अधिक अस्थियाँ मोटी, अवनत, अपनजनित मृदु और पीड़ा से युक्त हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप कुछ लोगों की लम्बाई कुछ कम हो जाती है तथा कुछ के सर का आकार बढ़ जाता है। यद्यपि इस रोग का कारण अभी भी अज्ञात है फिर भी कुछ लोगों को उच्च कोटि की प्रोटीन, कैल्शियम, विटामिन–सी और अन्तःस्रावी योगों से लाभ होते देखा गया है।

अस्थि–अर्बुद दो प्रकार के देखने में आते हैं। एक तो वे जो स्वतः अस्थियों में ही उत्पन्न होते हैं। दूसरे वे जो शरीर के अन्य अंगों विशेष रूप से फेफड़ों, थायरायड ग्रन्थि, प्रोस्टेट ग्रन्थि तथा स्तनों में वर्तमान दुर्दम अर्बुदों के विष के रक्त संचार द्वारा अस्थि तक पहुँचा कर उसे दूषित कर देने के कारण उत्पन्न होते हैं।

प्रायः इसी अवस्था के आसपास प्रौढ़ों में भी बच्चों के रिकेट्स से मिलता–जुलता अस्थि–मृदुता (आस्टियोमैलेसिया) नामक रोग देखने को मिलताहै। गर्भवती माताएं, जिनके कैल्शियम के भण्डार का एक बड़ा भाग गर्भ में पलने वाले शिशु पर खर्च होता रहता है, इसका अधिक शिकार होती हैं। इसके भी प्रायः वे ही कारण माने जाते हैं जिनका रिकेट्स के संदर्भ में उल्लेख किया गया है।

वृद्धावस्था में होने वाले अस्थिरोगों में सर्वप्रधान रोग हैं अस्थि–सुषिरता (*आस्टियोपोरोसिस*)। कुछ लोगों में अवस्था में वृद्धि के साथ–साथ अस्थियों के ऊतक कमजोर पड़ने लगते हैं, उनका लचीलापन समाप्त होने लगता है व भंगुरता बढ़ने लगती है। अस्थियों पर थोड़ा भी दबाव बढ़ जाने पर कभी–कभी अस्थियाँ बिना किसी व्यक्त कारण के अपने आप भंग हो जाती हैं। भंग हो जाने के बाद प्रायः जुड़ती नहीं हैं। यह स्थिति स्त्रियों में प्रायः रजोनिवृत्ति के बाद और पुरुषों में वृद्धावस्था में पाई जाती है। इसके लिए चयापचय में ह्रास और अंगों के अनुपयोग को मुख्य रूप से उत्तरदायी माना जाता है। इसके उपचार में उच्च प्रोटीन, कैल्शियम और फास्फोरस से युक्त शक्तिवर्धक खाद्य पदार्थ लाभदायक सिद्ध होते हैं। कभी–कभी पौरुष–शक्ति वर्धक योग तथा पुरुष यौन अन्तःस्राव के उत्पादन अच्छा असर दिखलाते हैं।

इस अवस्था में जोड़ों के दर्द जैसे - सन्धिशोथ, गठिया, पीठ का दर्द, कमर का दर्द, ग्रैव–अपकशेरुता आदि आमवात की शिकायत भी व्यापक रूप से पाई जाती है। इनका भी कारण चयापचय की क्रिया में गड़बड़ी, आम संचय, रक्त की विकृति, अस्थियों का हीन, अति एवं विषम उपयोग, जोड़ों पर लगे आघात आदि माने जाते हैं।

अस्थि रोगों से सुरक्षा के उपाय

- गर्भ में शिशु की सुरक्षा हेतु गर्भिणी को लौह, प्रोटीन, कैल्शियम, फासफोरस, विटामिन–डी से युक्त पौष्टिक आहार।
- गर्भिणी की आघातों, विशेष रूप से उदर प्रदेश पर लगने वाले आघातों से रक्षा ।
- उसे अति साहसिक कार्यों को न करने दें।
- उचित समय पर टिटेनस–टाक्साइड के टीके दिए जाएं।
- शिशु के प्रसव में पर्याप्त सावधानी बरती जाए ताकि इस अवधि में उसके अंगों को आघात न पहुँचने पाए।
- जन्म के बाद शिशु को पर्याप्त मात्रा में पूरी अवधि तक स्तन–पान कराएं व पौष्टिक आहार दिया जाए।
- समय पर प्रतिरक्षक टीके लगवाए जाएं।
- बालकों को अति साहसिक कार्यों एवं अस्थियों के विषम उपयोग से रोका जाए।

शेष पृष्ठ २५ पर

अस्थि रोगः कारण व रोकथाम

वैद्य र० म० नानल, मुम्बई

अस्थि संबंधी रोग आशुघाती जानलेवा न होते हुए भी अत्यन्त कष्टदायक एवं नुकसान पहुँचाने वाले होते हैं। ये रोग चिरकारी होने से व्यक्ति का नुकसान भी भारी होता है। शरीर के साथ-साथ मन पर भी दुष्परिणाम होते हैं। परावलम्बी जीवन के कारण व्यक्ति का कौटुंबिक जीवन भी संत्रस्त होता है। इनके कारणों,रोकथाम तथा उपचारों को जानना अत्यंत जरूरी है क्योंकि इनमें से बहुत से रोग पुराने होने पर असाध्य हो जाते हैं। यद्यपि आयुर्वेदीय चिकित्सा से इनमें काफी हद तक लाभ होता है, परन्तु पूर्णरूप से व्याधि नष्ट नहीं होती। अतः यह रोग उत्पन्न ही न हो इस दिशा में सतर्क रहकर प्रयास करना ही श्रेष्ठ होता है।

'अस्थि' क्या है?

शरीर धारण करने वाले सात पदार्थ होते हैं: रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र। इनमें से एक 'अस्थि' है। अस्थियाँ पांचभौतिक होते हुए भी 'पृथ्वी' महाभूत का आधिक्य दर्शाती हैं। यह सर्वाधिक 'कठिन' शरीर भाव हैं। गर्भ शरीर जो भावों से बनता है- (मातृज, पितृज, आत्मज, सात्म्यज और रसज) उनमें पितृभाव समुदाय के कारण अस्थियाँ बनती हैं।

अस्थियाँ वात दोष का आश्रय हैं। अर्थात् वात दोष का संतुलन बिगड़ने पर अस्थि सम्बन्धी रोगों की संभावना बढ़ती है।

अस्थि का पोषण आहार द्वारा ही प्रमुखतः होता है। आहारपाचन के बाद जो आहाररस निर्माण होता है उसमें "द्रवरूप अस्थि" का होना महत्वपूर्ण है। आहार रस बनने के पश्चात् बीसवें दिन से अस्थि निर्माण प्रारम्भ होता है।

अस्थि का प्रमुख कार्य देह (आकृति) धारण तथा मज्जा धातु का पोषण करना है। अस्थि कठिन, स्थिर, सच्छिद्र, खोखली, मज्जापूरित होती हैं। अस्थि पांच प्रकार के होते हैं : (क) कपाल (शिर व, कटिके) (ख) रुचक (दांत) (ग) तरुण (कान, नाक, कटिकशेरुकाओं के) (घ) वलय (पसलियाँ) (ड.) नलक (हाथ पैरों के नलिकाकार)

अस्थि के पचन के समय मल रूप में नख एवं केश बनते हैं। मेदो धातु से पोषण प्राप्त होने से मेदो विकृति का असर भी अस्थि पर अवश्य होता है। अस्थियों से पोषण प्राप्त होने से अस्थि के रोगों का कुप्रभाव मज्जा धातु पर भी पड़ता है। अस्थि के समान गुणात्मक आहार अथवा समान गुणाधिक्य वाला आहार उनको बढ़ाता है। विपरीत से क्षीणता आती है।

अस्थि संबंधी रोग कभी-कभी आशुकारी होते हैं, जैसे- अस्थिक्षत, अस्थिविद्रधि, अस्थिमर्माघात। कई रोग चिरकारी होते हैं जैसे- संध्यस्थिगतवात, मन्यास्तम्भ। अस्थिमर्म के आघात या विद्ध होने से कष्टसाध्य या असाध्य रोग होते हैं। ये आशुकारी व्याधि हैं।

वय के अनुसार अस्थियाँ दुर्बल होती जाती हैं। जैसे वृद्धावस्था में बहुत ही कमजोर हो जाती हैं। यह वायु एवं स्वभाव के कारण होता है। अस्थि के रोग "वातकाल" में अपने-अपने लक्षणों का बल प्रदर्शन करते हैं। जैसे- बड़ी सुबह, सायंकाल, वर्षा ऋतु। अस्थिविकारों का संबंध बड़ी आँत से होता है। इसीलिये विबंध जैसे लक्षण एवं बस्ति का प्रयोग चिकित्सा के रूप में होता है। अस्थिवह स्रोत का मूल 'मेदधातु' एवं 'जघन' है।

अस्थि रोग के हेतु : शरीर में जितने भी भाव पदार्थ हैं उनके उतने ही वहन मार्ग होते हैं। इन्हें 'स्रोत' कहा जाता है। इन्हीं के कारण जीवनकाल में सभी शारीरिक व मानसिक भाव उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के कारण क्षीणादि अवस्थाएँ भी होती हैं। इसलिए हमें 'अस्थिस्रोत' की दृष्टि के कारण देखने चाहिए।

अस्थिवह स्रोत के दृष्टिहेतु

व्यायामादतिसंक्षोभादस्थामतिविघट्टनात्।

अस्थिवाहीनि दुष्यन्ति वातलानां च सेवनात्।।

व्यायाम की अधिकता से, अधिक क्षोभ होने से, हड्डियों पर आघात होने से एवं वातवर्धक आहार-विहार, औषधि आदि से अस्थिवह स्रोत (एवं अस्थि) विकृति होते हैं।

अतिव्यायाम : अत्यधिक व्यायाम करना, जिन्हें व्यायाम की आदत ही न हो उनका व्यायाम करना शरीर में वात को दूषित करता है। जैसे- जिन्हें दौड़ने की आदत न हो एवं बैठे बिठाये काम करने की आदत हो उन्हें यदि १० मिनट तक तेज गति से दौड़ाया जाय तो शरीर में वेदना होती है। अस्थि धातु कमजोर हो तो अल्प व्यायाम से भी उनके रोग हो जाते हैं।

अतिसंक्षोभ : शरीर को सतत क्षुब्ध करने वाले प्रवास, व्यवसाय, खेलकूद इत्यादि से भी अस्थि संबंधी रोग होते हैं। जैसे गड्ढों से भरी सड़क पर वाहन चलाना, घुड़सवारी करना, डाकिया-दर्जी आदि व्यवसाय जिनमें पैरों द्वारा अतीव परिश्रम होने के कारण उनमें क्षोभ होता है। लॉन टेनिस के खिलाड़ियों को "टेनिसएल्बो" होना यह क्रीड़ा जन्य अस्थिरोग है।

आघात : हड्डियों का टूटना, संधि भ्रष्ट होना इत्यादि में प्रधान कारण आघात ही पाया जाता है।

वातकर आहार

अधिक तीखे पदार्थ, कड़वे पदार्थ, चरपरे पदार्थ (क्रमशः कटु, तिक्त, कषाय, रस) वातवर्धक होते हैं। रूक्ष, लघु, शीत, सूक्ष्म, कठोर (दारुण) ये गुण वात प्रकोपक होते

हैं इनके अत्यधिक सेवन से रोग होते हैं। कटु विपाक एवं लघुविपाक से वात प्रकोप होता है। शीतवीर्य द्रव्य वातकारक होते हैं।

उपरोक्त "गुणात्मक" आहार के अनुचित एवं दीर्घकालिक उपयोग से अस्थि रोग होते हैं।

वातकर आहार निम्न हैं :

- सूखी सब्जियाँ, बासी सब्जियाँ
- सूखा मांस, जैसे मछलियाँ
- कोदो, उद्दालक
- फलियों में होने वाले धान्य जैसे- चना
- अंकुरित धान्य
- तरबूज, जामुन, खरबूज
- कमलकंद, आलू, घुइयां
- गन्ने का रस, राब

वातकर विहार

दिनचर्योक्त कर्म : दैनंदिन जीवन में हम जो काम करते हैं उनमें से कुछ वात एवं अस्थि रोगों के कारण होते हैं। जैसे- अतिव्यायाम, अपने से बलाढ्य से विग्रह (युद्धादि) करना, अति मैथुन, अति अध्ययन, दौड़ना, अधिक तैरना, रात्रि जागरण, भार वहन, अति प्रवास, अति चिन्ता, टेढ़ी-मेढ़ी शैय्या, दिन में सोना। इन्हें टालना उचित होता है।

ऋतुचर्योक्त कारण : ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में वातवर्धक आहार विहार का सेवन करना। वेग धारण आदि। जीवित शरीर में कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ होती हैं। इनमें से १३ प्रकार की विशिष्ट प्रवृत्तियों को "वेग" कहते हैं। कुछ प्रवृत्तियाँ रोकने योग्य नहीं होती उन्हें 'अधारणीय वेग' कहते हैं। जैसे- अधोवायु, मल, मूत्र, उल्टियाँ होना, शुक्रस्राव, श्रम श्वास, छींक आना, अश्रु आना, डकार आना। ये प्रवृत्तियाँ अधारणीय हैं। इन्हें रोकने से रोग होते हैं।

हेतु रूप औषधि विचार

अयोग्य औषधि प्रयोग से प्राण भी नष्ट होते हैं। अतएव औषधियों का सेवन हमेशा विशेषज्ञ की सलाह से करना उचित है। आयुर्वेदीय वनौषधि तथा प्राणिज औषधियों में यह भय नहीं होता क्योंकि वे नैसर्गिक रूप में ही 'अल्पबल' होती है। किन्तु रसौषधियों तथा भांग अफीम आदि से बनी हुई औषधियाँ हानिकारक हो सकती हैं

दीर्घकाल तक सेवन से अम्ल रसात्मक-मद्य-आसव-अरिष्ट एवं लवण रसात्मक-भास्करलवण, अर्कपत्र लवण आदि दवाएं हानिकर हो सकती हैं।

आज बाजार में कई तरह के विरेचन योग उपलब्ध है। इनके सतत् उपयोग करने से भी अस्थिरोग हो जाते हैं

रोकथाम

रोग न हो इसलिए रोग निर्माण करने वाले कारणों से दूर रहना चाहिये। इसके साथ-साथ हमें नित्य हितकर द्रव्यों का सेवन करना चाहिये। अस्थिधातु को बल प्राप्त हो इस प्रकार के आहार विहार का विधिवत् सेवन करना चाहिए। जैसे- दूध, गेहूँ, अंडे, मूंग, उड़द आदि पदार्थ। मालिश करना, युक्ति एवं विधिपूर्वक व्यायाम करना। साहस कर्म न करना, सवारी धीरे चलाना एवं अपघात न हो इसलिए सतर्क रहना चाहिए।

आहार द्रव्यों के साथ-साथ आहार की विधि, मात्रा आदि का भी विचार करना आवश्यक एवं उपयोगी होता है। जैसे-

विषमाशन- अनियत खाना (मात्रा-गुण-काल की दृष्टि से अनियत होना।)

अनशन- भूखा रहना। उपवास करना।

अध्यशन- खाने के बाद उसके पूर्ण रूप से पाचन होने के पहले ही खाना।

प्रमिताशन- अत्यन्त कम प्रमाण में खाना।

तृषिताशन- प्यास लगनेपर पानी पीने की जगह भोजन करना।

क्षुधितांबुपान- भूख लगने पर अन्न न खाकर पानी ही पीना।

लंघनातियोग- अति लंघन करना।

विषम लंघन- अनियत लंघन करना कभी लंघन कभी अधिक खाना।

शीत भोजन- ठंडा खाना खा लेना।

विरुद्धाशन- परस्पर विरोधी द्रव्यों को मिलाकर खाना।

पृष्ठ १३ का शेष

साक्षात्कार . . .

साक्षात्कार के दौरान गोण्डा के एक मरीज के लिए दवा लेने आई औरत से हुई बातचीत से पता चला कि -

सत्तर वर्षीय सावित्री देवी जो कि कालिका निवास गोण्डा की निवासी हैं उनका दो साल से अंग्रेजी इलाज चल रहा था। एक साल बाद जाँच करने पर पता चला कि उन्हें गर्भाशय का कैंसर है व काफी गंभीर रूप धारण कर लिया है। वे चलने फिरने में भी असमर्थ हो गयीं थी। सभी डाक्टरों ने जबाब दे दिया था कि वे ज्यादा से ज्यादा छः महीने तक जीवित रह सकती हैं। तब अचानक अखबारों व दूरदर्शन पर चर्चित अतीक जी का इलाज करने आयीं। अतीक जी का इलाज डेढ़ महीने करने के बाद सावित्री जी अब यथावत चलने फिरने लगी हैं व उनको इस समय काफी आराम है। इलाज अभी भी जारी है।

अस्थिभंजन ज्वर : लक्षण एवं उपचार

वैद्य ब्रज बिहारी मिश्र, लखनऊ

अस्थि भंजन ज्वर का शाब्दिक अर्थ हड्डियों को तोड़ने वाला बुखार है।डण्डे से हड्डियों पर आघात करने से जिस प्रकार की भयंकर पीड़ा होती है वैसी ही पीड़ा इस ज्वर के होने से होती है, इसलिए इसे दण्डक ज्वर भी कहते हैं। इसकी अवधि एक सप्ताह की होने के कारण इसे सप्ताह ज्वर के नाम से भी पुकारा जाता है। यह एक औपसर्गिक रोग है। इसका संक्रमण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में होता है। आधुनिक चिकित्सक इस ज्वर को डेंगू फीवर कहते हैं। उनके अनुसार स्टेगोमिया फेसियाटा नामक मच्छर के काटने के कारण मनुष्य शरीर में कीटाणुओं का संक्रमण होने से यह रोग होता है। इन कीटाणुओं का प्रभाव रस, रक्त, यकृत, प्लीहा, तथा लसीका ग्रन्थियों पर पड़ता है।

रोग के लक्षण

नव्य मतानुसार देह और हड्डियों में तीव्र वेदना होना ही इस रोग का प्रमुख लक्षण है। पीड़ा हाथ की उंगलियों से प्रारम्भ होकर शरीर के अन्य भागों में होने लगती है। शरीर में छोटे-छोटे दाने ५-६ दिन के भीतर निकल आते हैं। संधि स्थानों में अधिक पीड़ा होती है। कभी-कभी जोड़ों में सूजन भी आ जाती है। जीभ का स्वाद नष्ट हो जाता है, भूख मिट जाती है तथा बुखार का वेग १०३ डिग्री से १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है। ज्वर आठवें दिन अकस्मात उतर जाता है तथा पीड़ा भी दूर हो जाती है।

आयुर्वेद के अनुसार यह ज्वर कफ तथा वात के प्रकोप से उत्पन्न होता है। इस ज्वर में हड्डियों के जोड़ों में तेज दर्द, सूजन, कास, प्रतिश्याय (जुकाम) आदि लक्षण विशेष रुप से पाये जाते हैं। इस रोग में बुखार उतर कर पुनः चढ़ जाता है तथा बुखार खत्म होने पर भी रोगी की हड्डियों में पीड़ा बची रहती है। यह देहातों की अपेक्षा शहरों में अधिक होता है। बच्चे तथा बूढ़े, जवानों की अपेक्षा इस रोग से अधिक कष्ट पाते हैं।

रोग के पूर्वरूप

आयुर्वेद के अनुसार उत्पन्न होने वाले रोग के जो साधारण लक्षण शरीर में दृष्टिगोचर होते हैं उन्हें उस रोग का पूर्वरूप कहा जाता है। इस ज्वर के उत्पन्न होने के पूर्व शरीर में दर्द, बिना परिश्रम के थकावट का अनुभव, भोजन में अरुचि, जी मिचलाना तथा अवसाद आदि के लक्षण प्रगट होने लगते हैं।

रोग की चिकित्सा

आयुर्वेद के अनुसार कफ एवं वात प्रशामक औषधियों के प्रयोग से यह ज्वर अच्छा होता है।

त्रिभुवनकीर्ति रस १०० मि० ग्रा०

श्रृंग भस्म १०० मि० ग्रा०

अभ्रक भस्म १०० मि० ग्रा०

गोदन्ती भस्म १०० मि० ग्रा०

प्रातः, सायंकाल एवं रात्रि को अदरक के रस एवं शहद से दें।

विषमज्वरान्तक लौह २०० मि० ग्रा०

पीपल छोटी चूर्ण २५० मि० ग्रा०

प्रातः एवं सायंकाल पान के रस एवं शहद से दें।

चन्द्रप्रभा बटी- २ गोली दोपहर व २ गोली रात को भोजन के बाद जल से दें।

ज्वरघ्न क्वाथ- करंज की पत्ती १२ ग्राम, सोंठ ३ ग्राम, कालीमिर्च ३ ग्राम, पीपल छोटी ३ ग्राम, गुरिच १२ ग्राम, मुनक्का १० ग्राम। सबको कूट कर ५०० मि० ली० जल में पकावें, जब जल ५० मि० ली० रहे तब छान कर २ चम्मच शहद मिला कर पीने से बड़ा लाभ होता है। यह क्वाथ वात कफ ज्वर व अस्थि भंजन ज्वर के साथ-साथ सन्निपात ज्वर, विषमज्वर, शीतज्वर (मलेरिया) आदि को भी नष्ट करता है।

पथ्य

भोजन में लघु आहार मूँग की दाल, दलिया, गाय का दूध, धान का लावा (खीलें), मुनक्का, अनार, सेब, पपीता आदि फल सेवन करना हितकर है। पूर्ण विश्राम करने से शीघ्र आरोग्य प्राप्त होता है।

स्नान, व्यायाम, परिश्रम (शारीरिक व मानसिक) तथा व्यवाय (स्त्री सहवास) आदि से बचें।

पीठ दर्द और तैराकी

पीठ में दर्द है? पानी में डुबकी लगाकर व्यायाम कीजिए। विशेषज्ञों का कहना है कि पीठ की तकलीफ से ग्रस्त रहने वाले लोगों को नियमित तैराकी करनी चाहिए। तैराकी से मांसपेशियाँ सुदृढ़ बनती हैं और पानी का दबाव रीढ़ को सहारा देकर उसे भविष्य में और अधिक समस्याग्रस्त होने से बचाता है। ऐसे लोगों को पानी में डुबकी लगाकर सीधा तैरना चाहिए। उन्हें आड़ा-तिरछा होने से बचना चाहिए। 'बटर फ्लाई' और 'बैक स्ट्रोक' उनके लिए सही नहीं है।

स्वास्थ्य आलोक, सितम्बर '९३

वयस्कों में अस्थिरोग

वैद्य वी० बी० म्हैस्कर, बड़ौदा

शरीर की सभी धातुओं में अस्थि कठिनतम धातु है। अस्थि की कठिनता इसलिए है कि वह शरीर में पृथ्वी महाभूत का प्रतिनिधि है। अस्थि का ऊपरी भाग पर्यस्थि कला कहलाता है। इसका मध्य भाग खोखला होता है जिसमें अस्थि मज्जा होती है।सभी अस्थियाँ एक जैसी मजबूत नहीं होतीं। तरुणास्थियाँ और रुचकास्थियाँ तो न केवल मृदु हैं बल्कि नम्य भी हैं। उन्हें उपास्थि कहते हैं जो अत्यन्त चीमड़ भी होती है।

हड्डियों से शरीर का कंकाल बना है।हड्डियाँ शरीर को सहारा देकर सीधा खड़ा करती हैं। शरीर के अंग-प्रत्यंगों की विविध गतिविधियों के लिए जो जोड़ बने हैं वे हड्डियों से बने हैं। अस्थियों से पेशियां मजबूती के साथ जुड़ी होती हैं। महत्वपूर्ण कोमल अंगों को अस्थि से सुरक्षा प्राप्त होती है। जैसे पसलियों के अस्थिमय पंजर से हृदय, फेफड़ों और यकृत की सुरक्षा होती है। कशेरुकाओं से मेरु रज्जु की सुरक्षा होती है। अस्थिल करोटि- बक्स में मस्तिष्क सुरक्षित रहता है।

अस्थियां शरीर भार को सहन करती हैं। इन्हीं के कारण शरीर प्रचंड धक्कों को सहन कर पाता है और दौड़ना -कूदना भी इन्हीं के कारण संभव हो पाता है। बीस वर्ष की वय तक अस्थियाँ परिपक्वता प्राप्त कर लेती हैं।

· वयस्कता और अस्थियाँ

वयस्कता में व्यक्ति पूर्ण शारीरिक क्षमता से सम्पन्न हो जाता है अतः उससे अपनी सम्पूर्ण क्षमता के उपयोग की अपेक्षा की जाती है। आयुर्वेद में वयस्कता को 'समत्वागतवीर्यबल' (वह उम्र जिसमें, व्यक्ति में ऊर्जा, शक्ति आदि का संतुलन होता है) कहते हैं। नवयुवकों और नवयुवतियों को प्रायः ऐसे काम करने पड़ते है जिनमें अत्यधिक शारीरिक शक्ति का व्यय करना पड़ता है। नवयुवतियों को गर्भावस्था, प्रसव, स्तनपान आदि ऐसे अतिरिक्त कार्य भी करने पड़ते हैं जिनमें हड्डियों पर बल पड़ता है।

वयस्कता में प्रायः चार प्रकार के अस्थिरोग होते हैं जिनकी चर्चा यहाँ प्रस्तुत है:-

अभिघातज

इसमें हर प्रकार की दुर्घटना जन्य अस्थि-व्याधियों का समावेश होता है जैसे, ऊंचाई से गिरना, तीव्रगति दुपहिया वाहनों की टक्कर, अथवा किसी वाहन की चपेट में आ जाना, जिनमें अंततः प्रायः अस्थि भंग होकर ही रहता है। अस्थिभंग कई प्रकार के होते हैं। कभी हड्डी तो टूटती है लेकिन खुला घाव नहीं होता। कभी हड्डी के टूटने के साथ ही किसी अंग में अंदरूनी घाव भी होता है जैसे पसली टूटे और फेफड़े में घुस जाय। कभी-कभी टूटी हुई हड्डी का एक सिरा किसी दूसरी हड्डी में जा फंसता है। कभी हड्डी के खंड-खंड हो जाते हैं। कभी हरी टहनी के टूटने जैसा अस्थिभंग होता है जिसमें हड्डी आधी टूटती और आधी मुड़ी रह जाती है।

प्राथमिक उपचार

लकड़ी की खपच्चियों की सहायता से अंग को जकड़कर अचल कर दें। यदि तत्काल खपच्चियां न मिलें तो अखबार लपेट कर या छातों से काम चलायें। अंग को गलपट्टी का सहारा दें। ध्यान रहे कि रोगी को सहारे से राहत मिलनी चाहिए। यह न हो कि उसका दर्द और परेशानी बढ़ जाये। अधः शाखा में अस्थि भंग होने पर रोगी को लिटाये रखें, बैठने न दें।

उपचार

उचित निदान के पश्चात् अंग का प्रभावी अचलीकरण किया जाता है जिससे अंग पक्की तौर पर हिल-डुल न सके। यह काम खपच्चियों अथवा खास प्रकार की पट्टियों (जैसे हंसली के टूटने पर अंग्रेजी के 8 के आकार की पट्टी), प्लास्टरीकरण, कर्षण द्वारा टूटी हुई अस्थिल सतह का सन्निकटन, पिनों और प्लेटों का प्रयोग, ह्ड्डी की कलम आदि द्वारा किया जाता है। ऊर्ध्व शाखा के अस्थिभग्न के समुचित रूप से जुड़ने में लगभग ६ हफ्तों का समय लगता है और अधः शाखा के अस्थिभग्न के ठीक होने में तीन महीने का समय लग सकता है। रोगी को शुद्ध हवा, पूर्ण विश्राम और पौष्टिक आहार मिलना ही चाहिए।

संक्रामक

अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीव अस्थियों में संक्रामक विकार उत्पन्न कर देते हैं। इनमें प्रमुख क्षय के दंडाणु, स्टैफिलोकोकस एवं स्ट्रैप्टो कोकस, न्यूमोकोकस, अमीबा, परासूक्ष्मदर्शी विषाणु, सिफलिस, थाइफोसस दंडाणु आदि हैं। इनमें भी क्षय के दंडाणु अति सामान्य हैं।

ये जीव तीव्र एवं चिरकालिक रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार के अस्थिल संक्रमणों का कारण खरोंच, टॉन्सिल की सूजन, गले के चिरकालिक संक्रमण, क्षरणग्रस्त दांत आदि हैं। इन स्थलों से रुधिर की धारा के साथ संक्रमण हड्डियों में पहुँचते हैं।

रोग लक्षण

कंपकपी अथवा स्तब्धता और वेदना तथा स्पर्शासहिष्णुता (छूने या दबाने से पीड़ा) के साथ ज्वर, हिलने-डुलने में कष्ट आदि। लक्षण सामान्य से लेकर तीव्र तक हो सकते हैं जो रोगी की सहनशीलता तथा रोग की तीव्रता पर निर्भर करते हैं।

वयस्कों में संक्रामक जीव प्रायः क्षय के जीवाणु होते हैं। मूल केन्द्र फेफड़े अथवा आँतें होती हैं। रुधिर की धारा के साथ ये हड्डियों में पहुँचते हैं और वहाँ सूजन उत्पन्न करते हैं।

वक्ष-कटि क्षेत्र की कशेरुक अस्थियाँ प्रभावित होती हैं। दर्द, पीठ का दर्द, रीढ़ का झुकाव, रीढ़ की गतिविधियों का सीमित हो जाना, हल्का ज्वर, भार में कमी ये सामान्य लक्षण हैं। रीढ़ के इर्द-गिर्द मवाद युक्त फोड़े हो जाते हैं। दूरस्थ क्षेत्रों में बड़े-बड़े शीतव्रण हो जाते हैं। सावधानी के साथ जांच और रीढ़ की एक्स-किरणों द्वारा जांच से निदान हो जाता है।

उपचार: फेफड़ों के इलाज तथा क्षय के जीवाणुओं के प्रभावी उपचार से रोकथाम होती है। रीढ़ के प्रभावित होने पर अचलीकरण, उचित विश्राम, ताजी हवा, प्रोषाहार और क्षयरोधी दवाओं का उचित मात्रा में पर्याप्त समय तक सेवन परमावश्यक है। जख्म के अन्दर का मवाद निकालना अत्यावश्यक है।आयुर्वेदिक कल्पों जैसे वसंत कल्प का प्रयोग किया जा सकता है। सहायक रूप में मांसाहार व आसवारिष्टों का सेवन लाभकर है।

अस्थियों की अपूर्णताजन्य व्याधियाँ

बचपन में सूखा रोग। बाद की उम्र में होने वाले सूखा रोग तथा अस्थिमृदुता ऐसी व्याधियाँ हैं जो संपूर्ण अस्थि कंकाल को प्रभावित करती हैं। यौवनोद्गम और वयस्कता में विलंबित सूखा रोग का आक्रमण होता है। हमारे देश में अस्थिमृदुता बहुतायत से पायी-जाती है। प्रायः इस रोग से स्त्रियाँ प्रभावित होती हैं। वह भी बच्चे उत्पन्न करने की उम्र में। गरीबी, कुपोषण, अस्वास्थ्यकर सामाजिक परिस्थितियाँ, अति परिश्रम और गर्भावस्था और स्तनपान कराना रोगकारक सिद्ध होते हैं। गरीबी और अशिक्षा मूल कारण हैं। विटामिन-डी और कैल्शियम की कमी अपूर्णता कारक है।

हड्डियों में दर्द मुख्य लक्षण है। यह दर्द गहरे में पैठा हुआ होता है। हिलने-डुलने और दबाव से दर्द बढ़ जाता है। अत्यधिक दुर्बलता, थकान, पेशी शक्ति ह्रास और रोग की प्रवृद्धावस्था में झटके आते हैं। ये सभी लक्षण गर्भावस्था में तीव्र हो जाते हैं।

रोकथाम के उपाय

उचित आहार, जिसमें पर्याप्त वसा, घुलनशील विटामिन-डी और कैल्शियम हो, लेना चाहिए। मुख्य रूप से श्रमिक स्त्रियाँ रोगग्रस्त होती हैं अतः उनमें समुचित खाद्य पदार्थों के प्रति सजगता उत्पन्न करना अत्यावश्यक है। समुचित उपायों से गर्भधारण की रोकथाम भी अनिवार्य है।

उपचार

विटामिन-डी और कैल्शियम से भरपूर आहार सेवन करायें। औषधियाँ जिनमें ये तत्व हों उनका सेवन करायें।

गर्भावस्था में विश्राम

आयुर्वेद की दृष्टि से इस स्थिति में हड्डियाँ क्षय की स्थिति में होती हैं और दूषित वात दर्द और अनिद्रा उत्पन्न करता है। चन्दन, बला लाक्षादि तैल की मालिश, प्रवाल, श्रृंग और अजास्थि भस्म का प्रयोग, शतावरी-अश्वगंधा सिद्ध दूध, अर्जुन-सिद्ध दूध, ताजे मक्खन तथा सस्नेह तक्र का सेवन कराना चाहिए। कुक्कुटाँडत्वक्भस्म, मछली और मछली का तेल लाभकारक हैं।

नववृद्धि

वयस्कता में, नववृद्धि, अर्बुद या कैंसर से भी अस्थियाँ प्रभावित होती हैं। ये स्वतन्त्र, परतंत्र, मारक अथवा अमारक हो सकती हैं। ये विशिष्ट अस्थि रोग हैं। इनके होने के ठीक-ठाक कारण अज्ञात हैं अतः इनके रोकथाम के निश्चित उपाय नहीं हैं। शल्यचिकित्सा, विकिरण चिकित्सा और रसायन चिकित्सा का परिणाम अच्छा होता है। इनसे हमेशा रोग का उन्मूलन तो नहीं होता किन्तु रोगी का जीवन सुसह्य अवश्य हो जाता है।

पृष्ठ २० का शेष

- शैशव, बाल और किशोरावस्था में बालकों की दुर्घटनाओं से सुरक्षा की जाए। चोट, मोच, अस्थि के अपनी जगह से खिसकने-टूटने आदि की घटनाएं इसी अवधि में वाहन दुर्घटनाओं और प्रायः खेल के मैदानों में ही अधिक घटती हैं।
- अस्थियों का समझ-बूझ कर समुचित उपयोग किया जाए उनके अति और हीन योगों से बचा जाए। दुर्घटनाओं से सुरक्षा में पूरी सावधानी बरती जाए। आहार पर उचित ध्यान दिया जाए।
- जोड़ों को सक्रिय एवं गतिशील बनाए रखने के लिए यदाकदा सम्पूर्ण शरीर, विशेष रूप से जोड़ों की मालिश की जाए। प्रतिदिन जोड़ों से सम्बन्धित हलके व्यायाम किए जाएं जिससे कमोवेश सभी जोड़ प्रभावित हों। हड्डियों के रोगों के उपचार में योगासन विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होते हैं।

अस्थि रोगों का उपचार : उपचार रोगी और रोग की अवस्था एवं गम्भीरता के अनुरूप की जाती है। अब सभी लोग औषधियों की अपेक्षा भौतिक-चिकित्सा (फिजियोथिरैपी) पर ही अधिक बल देने लगे हैं।

आयुर्वेद में भी अस्थि रोगों में उपयोगी अनेक सफल योग हैं। बन्द चोट-मोच में शहद, चूना, आंबा हल्दी, चोट में सज्जी, तिल की खली, प्याज़ के कल्क आदि का लेप, भग्न में हड़जोड़ तथा लाक्षादि गुग्गुल/ पीड़ा को कम करने के लिए अन्तर्सेव्य द्रव्यों में स्फटिक भस्म, नाग भस्म और उसके योग, महायोगराज गुग्गुलु तथा वातविध्वंसन रस-बाह्य उपयोग के लिए पंचगुण तेल, नारायण तैल, महाविषगर्भ तेल, अस्थि-सुषिरता, अस्थिक्षय एवं अस्थिशोष में कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म, प्रवाल पिष्टी, मुक्ता पिष्टी, मधुमालिनी बसंत एवं पुष्पधन्वा रस विशेष रूप से उपयोगी पाए गए हैं, लेकिन चिकित्सा किसी योग्य और अनुभवी व्यक्ति से ही करानी चाहिए।

बच्चों में रिकेट्स

हाथ-पैरों में उत्पन्न विरूपता

डा० आनन्द प्रकाश अचल, गया

सुनीता ने जब अमित को जन्म दिया तो कितनी खुश थी वह। दिन भर न जाने कितने सपने देखा करती थी अपने अमित के लिए। देखते ही देखते एक साल कैसे बीत गया इसका उसे पता भी नहीं चला। पर इधर कुछ दिनों से उसे अमित के व्यवहार में अजीब सा परिवर्तन महसूस होने लंगा। उसका सदा हँसता-खेलता रहने वाला अमित अब चिड़चिड़ा सा हो गया था। उसके व्यवहार से ऐसा लगता था मानो वह कहीं न कहीं कष्ट का अनुभव कर रहा है। रात को सोते वक्त उसकी तकलीफ कुछ ज्यादा ही बढ़ जाती थी, उसके माथेपर पसीने के बूँदें छलक आती थीं। वह दिन प्रतिदिन दुर्बल और थुलथुला होता जा रहा था।

एक दिन जब वह अमित को नहला रही थी तो उसने अमित की छाती में कुछ असामान्यता का अनुभव किया। उसकी छाती का अगला हिस्सा ऊपर की ओर कीपाकार आकृति में उठा था, और उसकी छाती की आकृति कबूतर की छाती के समान दिख रही थी। यह देखकर उसका दिल काँप उठा। गरीबी और अंधविश्वास की मारी सुनीता ने गाँव के किसी चिकित्सक या स्वास्थ्य केन्द्र जाने के बजाये जादू-टोने, झाड़-फूँक वगैरह का ही सहारा लिया। पर बीमारी ऐसी थी कि जाने का नाम ही नहीं ले रही थी। किसी तरह एक वर्ष और बीत गया। पर अमित के रोग के लक्षण अब पहले से बढ़ गये थे। रीढ़ की हड्डी भी अब बेडौल नज़र आ रही थी। टांग की अस्थियों के निचले सिरे कुछ बढ़े से नज़र आ रहे थे। अब तो उसकी टाँगें भी मुड़ सी गयी थीं। ऐसा लगता था मानों वे शरीर का भार उठाने की हालत में नहीं हैं। आखिर जब मामला सिर से ऊपर जाने लगा तो वह अमित को पास के स्वास्थ्य केन्द्र ले गयी। वहाँ उसे पता चला कि उसके अमित को "रिकेट्स" नामक रोग हो गया है। यदि वह समय रहते अमित को स्वास्थ्य केन्द्र ले आती तो अमित में ये विकलांगता नहीं उत्पन्न होने पाती।

आखिर रिकेट्स है क्या?

रिकेट्स शिशुओं और बालकों में पायी जाने वाली एक अस्थिविकार जन्य व्याधि है। इसकी उत्पत्ति का प्रमुख कारण कैल्सियम और विटामिन 'डी' का अभाव है। इन तत्वों की कमी से अस्थियाँ अपना कड़ापन खो देती हैं। परिणामस्वरूप इसका प्रमुख लक्षण अस्थियों की कुरचनाओं के रुप में प्रकट होता है। काश्यप ने "फक्क" रोग (रिकेट्स) का वर्णन करते हुए काश्यप-संहिता में लिखा है कि एक वर्ष का हो जाने के बाद भी जो बालक अपने पैरों पर न खड़ा हो सके और न चल सके तो उसे फक्क रोग से पीड़ित समझना चाहिए।

अस्थियों की कुरचनाएँ बालक के बाह्य व्यक्तित्व को विकृत कर डालती हैं और उसे शारीरिक रूप से विकलांग बना डालती हैं। साथ ही अन्य अनेक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं- जैसे यकृत और प्लीहा का बढ़ जाना, अत्यधिक पसीना आना, शरीर का स्पर्श करने पर उसका कोमल थुलथुला सा मालूम पड़ना आदि।

रिकेट्स के कारण

रिकेट्स की उत्पत्ति के दो मुख्य कारण हो सकते हैं- आँतों द्वारा कैल्सियम का अवशोषण दोषपूर्ण या अपर्याप्त होना तथा वृक्कों द्वारा कैल्सियम एवं अन्य खनिजों का अत्यधिक निकास होना। इन दोनों में से किसी भी परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अस्थिकल्प ऊतक और अस्थियों का विकास करने वाले छोरों पर स्थित उपास्थि कोशिका स्तम्भ का कैल्सिकरण अपर्याप्त और अधूरा रह जाता है। इसके अतिरिक्त रिकेट्स की उत्पत्ति के अन्य कारण भी हो सकते हैं, जैसे- उन एन्जाइमों का अपनी आवश्यक मात्रा से कम या अनुपस्थित होना जिनकी सहायता से ही अस्थि और उपास्थि कोशिकाओं के कैल्सिकरण के लिए आवश्यक कैल्सियम का उपयोग किया जा सकता है।

रिकेट्स और हाथ-पैरों में उत्पन्न विरूपता

रिकेट्स का प्रभाव प्राणी के समस्त अंगों पर किसी न किसी रूप में पड़ता है, परन्तु जो तन्त्र सबसे अधिक प्रभावित होता है वह है कंकाल तंत्र। इससे रीढ़ की हड्डी, छाती की हड्डी, खोपड़ी और हाथ-पैरों की अस्थियों में विरूपता उत्पन्न हो जाती है। यहाँ हम अपना ध्यान मुख्य रूप से रिकेट्स द्वारा हाथ-पैरों में उत्पन्न विरूपता पर केन्द्रित रखेंगे।

हाथ और पैर ही शरीर के अंग हैं, जिन्हें सर्वाधिक कार्य करने होते हैं। हाथों में पैरों की अपेक्षा कम विरूपता उत्पन्न होती है। रिकेट्स द्वारा ग्रसित होने पर प्रबाहु की अस्थियों के अन्तिम छोर मोटे होने लगते हैं। कुछ बच्चों की प्रबाहुओं की अस्थियों में रिकेटजन्य वक्रता आने लगती है। उनकी कलाई और कोहनियों के जोड़ ढीले पड़ जाते हैं। ऐसे बच्चों के इन अंगों के भाग पीछे की ओर अथवा बगल में मुड़कर विकृत हो जाते हैं।

जहाँ तक पैरों का सवाल है उनको तो शरीर का सम्पूर्ण भार ही वहन करना पड़ता है। एक ओर निरन्तर कमजोर और शिथिल होती हुई अस्थियों और मांसपेशियों के कारण और दूसरी ओर शरीर का सम्पूर्ण भार वहन करने के कारण सर्वाधिक विरूपता पैरों में ही उत्पन्न होती है। संधियों का शिथिल होना इनकी विरूपता को बढ़ाने में और भी सहायक सिद्ध होता है। पैरों या टाँगों में उत्पन्न विरूपता तब अधिक स्पष्ट रूप धारण कर लेती है, जब बच्चा

अपने पैरों पर खड़ा होना और चलना शुरू कर देता है। टाँगों में रिकेट्स से उत्पन्न विरुपताएं मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं। ये हैं– बर्हिनत जानु और अन्तर्नत जानु।

बर्हिनत जानु की स्थिति में टाँगों में उत्पन्न विरूपता अंग्रेजी भाषा के 'X' अक्षर का आकार धारण कर लेती है। इसीलिए इसे X आकृति की विरूपता या जानु–वेलगम भी कहते हैं। बर्हिनत जानु की प्रारम्भिक अवस्था में टाँगें यद्यपि सीधी रहती हैं, परन्तु घुटनों के जोड़ पर से अन्दर की ओर मुड़ जाती है। फलतः दोनों टाँगों के घुटने एक दूसरे के नज़दीक आ जाते हैं और दोनों पाँव एक दूसरे से असामान्य रूप से दूर हट जाते हैं। दोनों पावों के बीच की दूरी जितनी ही अधिक बढ़ती है विरूपता उतनी ही गम्भीर मानी जाती है।

तीव्र विरूपता की अवस्था में दोनों जाँघों की अस्थियों के निचले भाग जिन्हें ऊरुस्थूलक (फिमोरल कौन्डाइल) कहते हैं, विषम रूप से विकसित हो जाते हैं। टाँग की अस्थि अन्दर की ओर मुड़कर उत्तल आकृति की हो जाती हैं।

अन्तर्नत जानु की स्थिति में टाँगों में उत्पन्न विरुपता अंग्रेजी भाषा के '()' अक्षर का आकार धारण कर लेती है। इसीलिए इसे ()–आकृति की विरुपता या जानु वेरम् भी कहते हैं। यह विरूपता बहिर्नत जानुजन्य विरूपता के ठीक विपरीत होती है। इसमें दोनों पाँव एकदम एक दूसरे के समीप आ जाते हैं और दोनों घुटने असामान्य रूप से एक–दूसरे से दूर हो जाते हैं। फलतः दोनों टाँगों के बीच का स्थान एक गोलाई का रूप धारण कर लेता है। दोनों घुटनों के बीच की दूरी जितनी ही अधिक बढ़ती जाती है अन्तर्नत जानुजन्य विरूपता का प्रतिशत भी उतना ही बढ़ता जाता है। इस विकृति की उत्पत्ति के दो मुख्य कारण हैं– जानु संधि का शिथिल हो जाना और टाँगों की अस्थियों के ऊपरी और बीच के तिहाई भाग का बाहर की ओर उत्तल वक्रता धारण करना। अधिक गम्भीर स्थिति में पाँव का निचला एक तिहाई भाग भी साथ ही विकृत हो अन्दर की ओर घूम जाता है। अस्थियों के निरन्तर मुलायम होते जाने और भार वहन करने के कारण जाँघ की अस्थि में भी विरुपता उत्पन्न हो जाती है।

रिकेट्स में भार वहन करने के कारण उत्पन्न विरूपता आगे चलकर अन्तर्नत नितम्ब (कॉक्सा वेरा) का रूप धारण कर लेती है। यह वह स्थिति है, जिसमें ऊरु अस्थि की ग्रीवा का हिस्सा नीचे की ओर झुक जाता है। उस अस्थि की ग्रीवा के अक्ष द्वारा एक बेडौल कोण का निर्माण होने के कारण जंघा की अस्थि विरुपित हो जाती है। जंघा की मांसपेशियों के खिंचाव में परिवर्तन आ जाता है, और त्रिक प्रदेश झुक जाता है।

रिकेट्स विरूपता द्विपार्श्वीय होती है। यह विरूपता शरीर के दाहिने और बायें दोनों ही अंगों में पायी जाती है। पर इस विरूपता का विस्तार दोनों अंगों में अलग–अलग हो सकता है। कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि एक ही बालक की एक टाँग में जानु वेरम और दूसरी टाँग में जानु वेलगम की उपस्थिति पायी जाती है।

रिकेट्स की रोकथाम एवं उपचार

रिकेट्स एक कुपोषणजनित व्याधि है। इसकी उत्पत्ति का मुख्य कारण शुद्ध वायु, धूप, विटामिन, कैल्शियम और खनिजों से युक्त संतुलित आहार का अभाव है। अतः रिकेट्स के उपचार एवं रोकथाम के लिए सर्वप्रथम इसकी उत्पत्ति के इन सहायक कारणों को दूर करना आवश्यक है। तभी रिकेट्स की रोकथाम सम्भव है। अतः आप अपने बच्चों के आहार में सभी आवश्यक पोषक तत्वों को शामिल कीजिए। उन्हें पर्याप्त मात्रा में दूध, कैल्शियम, और विटामिन 'डी' से युक्त आहार दें। उनके शरीर पर सुबह की धूप पर्याप्त समय तक पड़ने दें। सूर्य की किरणें विटामिन 'डी' की उत्पत्ति का एक प्रमुख माध्यम होती हैं। यह विटामिन 'डी' कैल्शियम के अवशोषण में सहायक होता है।

रिकेट्स से ग्रस्त बालक को अन्य औषधियों के साथ प्रायः निम्न औषधियाँ दी जाती हैं–

- विटामिन 'डी' की १,००,००० से २,००,००० अ० मा० की मात्रा प्रतिदिन।
- कैल्शियम लैक्टेट या कैल्शियम ग्लूकोनेट के रूप में कैल्शियम की उपर्युक्त मात्रा।
- कैल्शियम और विटामिन से पूर्ण आहार।

रिकेट्स द्वारा हाथ–पैरों में विरूपता उत्पन्न होने पर इस सामान्य चिकित्सा के साथ–साथ कुछ विशिष्ट चिकित्सा भी अपनायी जाती हैं।

रिकेट्स में भार–वहन करने के कारण सर्वाधिक विकृति पैरों की अस्थियों में उत्पन्न होती है। ऐसे बच्चों को इस प्रकार का आहार देना चाहिए, जिससे उनका शारीरिक भार न बढ़ने पाये, साथ ही सभी आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति भी होती चले। जब तक रिकेट्स की प्रकोपावस्था समाप्त न हो, तब तक ऐसे बच्चों को पैरों पर खड़ा होने और चलने से रोका जाये।

जानु संधि की शिथिलता के साथ उत्पन्न तीव्र विरूपता की स्थिति में प्लास्टर–स्प्लिन्ट, स्थानान्तरणीय जीलेटिन, ब्रेस तथा अन्य विकलांगता निरोधी उपकरणों का व्यवहार किया जाता है।

अस्थियों की तीव्र विरूपता की स्थिति में कभी–कभी अस्थि विच्छेदन का सहारा लेना पड़ता है। यह ऑपरेशन बालक के पाँच वर्ष के पूर्ण हो जाने के बाद छः वर्ष की आयु में किया जाता है। क्योंकि इस आयु–काल तक रिकेट्स की सक्रिय अवस्था समाप्त हो जाती है। अस्थिविच्छेदन द्वारा अस्थि में उत्पन्न विरूपता को ठीक कर दिया जाता है, और इसके बाद प्लास्टर–कास्ट द्वारा अस्थि को दो या तीन माह के लिए स्थिर कर दिया जाता है। इस कालावधि में अस्थियाँ जुड़कर अपना सामान्य पूर्व रूप धारण कर लेती हैं। अधिक गम्भीर विरूपताओं के लिये अस्थिविच्छेदन के साथ–साथ अन्य उपायों का भी व्यवहार किया जाता है।

आपका शिशु या बालक रिकेट्स की किस अवस्था से गुज़र रहा है, उसे किन चिकित्सीय साधनों की आवश्यकता है, इसके लिए आप अपने चिकित्सक की तत्काल सलाह लें जो बालक की व्याधि को दूर करने में सहायक होगा।

अस्थि रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

डा० टी० के० अब्दुल रज़ाक, कालीकट

मानव शरीर का ढांचा हड्डियों से निर्मित है। हड्डियों का एक-तिहाई भाग जैविक पदार्थों से और दो तिहाई भाग कैल्शियम फास्फेट, कैल्शियम कार्बोनेट, मैग्नीशियम फास्फेट और सोडियम क्लोराइड जैसे पार्थिव लवणों से निर्मित है। वयस्क व्यक्ति में हड्डियों की संख्या २०० है। जन्म के समय २७८ हड्डियाँ होती हैं। तदनंतर समय बीतने के साथ-साथ कुछ हड्डियाँ आपस में मिल जाती हैं। जन्म के समय अधिकांश हड्डियाँ उपास्थि (कार्टिलेज) के सदृश होती हैं जिनका बाद में अस्थिभवन होता है। हड्डियों के पूर्णतः परिपक्व होने के पश्चात् उनके लिए अपने तत्वों का पुनर्नवीकरण संभव नहीं हो पाता।

अस्थिरोग : हड्डियों के महत्वपूर्ण रोग हैं, अस्थिक्षय, जिसमें हड्डियाँ, टेढ़ी पड़कर छोटे-छोटे कणों के रुप में घिस जाती हैं। परिगलन (नेक्रोसिस), जिसमें हड्डियां अपनी शक्ति खो बैठती हैं, सूखा रोग (रिकेट्स)- एक बच्चों को होने वाला रोग जिसमें हड्डियों की बाहरी झिल्ली सूज जाती है।

कारण : तंत्र में विजातीय पदार्थ या जीव विष का संचय समस्त रोगों का मूल कारण है। हमारे तंत्र में विजातीय पदार्थ या जीवविष गलत खुराक से, अतिभोजन से, असंतुलित आहर और सामान्य रूप से हमारी गलत आदतों से संचित होते हैं। अन्य तात्कालिक कारणों में आघात, शरीर का गलत आसन, सोते समय और व्यायाम काल में गलत दबाव, खट्टे आहार, शराब और सिगरेट आते हैं।

उपचार विधियाँ : अस्थि रोगों के उपचार में अंतरतम तक प्रभावित करने वाले पांच प्राकृतिक तत्व सूर्य का प्रकाश, हवा, मिट्टी, ईथर और पानी हैं। आहार चिकित्सा, मालिश चिकित्सा, यांत्रिक चिकित्सा और दाब चिकित्सा (ऐक्यूप्रेशर) अन्य प्राकृतिक चिकित्सा विधियाँ हैं।

आहार चिकित्सा

अस्थि रोगी के आहार में खटाई बिल्कुल नहीं होनी चाहिए यहाँ तक कि दही भी नहीं। सभी कृत्रिम आहार, बेमेल मिले-जुले पदार्थ, तले पदार्थ, कब्ज़ करने वाले पदार्थ आदि से बचना चाहिए। सब्जियाँ और फल यथेष्ट प्रचुर मात्रा में लेना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, रोगी को चिकनाई वाले पदार्थ और मधुर पदार्थों से दूर रहना चाहिए। रात के खाने और सोने के बीच पर्याप्त अन्तर होना चाहिए। बेहतर हो, यदि रोगी शाम के लगभग ६ बजे खाना खाये और ९ या ९.३० तक सो जाय।

उपवास और विश्राम

उपवास और विश्राम चिरकालिक और हठी विकृतियों के उपचार हैं। किन्तु भूखों मरना आवश्यक नहीं। उपवास मूलतः एक शुद्धीकरण की प्रक्रिया है। उपवास से शरीर में पहुँचे हुए जीवविष और अन्य जहरीले पदार्थ शीघ्र बाहर निकल जाते हैं। यह विकृतियों, पोषाहार तथा सात्म्य की गड़बड़ियों को ठीक कर देता है और निस्सारक अंगों की शक्ति बढ़ाता तथा संपूर्ण तंत्र को फिर से व्यवस्थित कर देता है। दिन में सोने से बचना चाहिए, उपवास करते समय भी।

सूर्य प्रकाश

सूरज की धूप से आविष्ट पदार्थों की शक्ति जांच से खरी साबित हुई है और वे अनेक रोगों में रामबाण साबित हुए हैं। ये खास तौर से सौम्य, सुरक्षित, दूरगामी और स्थायी प्रभावकारी सिद्ध हुए हैं। यदि सूरज की धूप और रंगों का समुचित उपयोग स्वास्थ्य संरक्षण और चिकित्सा में किया जाय तो वे इस कार्य में अचूक सिद्ध होते हैं। अस्थिरोगों के लिए सूर्य का प्रकाश एक वरदान है, विशेष रूप से हड्डियों के नरम होने की बीमारी में। धूप-स्नान बहुत फायदेमंद है। सुबह या शाम को धूपस्नान नियमित रूप से करना चाहिए।

जलचिकित्सा

यह प्राकृतिक चिकित्सा की अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा है। पानी का विविध रूपों और तापों में वैज्ञानिक प्रयोग लगभग सभी जीर्ण और तीव्र रोगों में अनिवार्य है। पानी को पिलाने के साथ ही बाहरी सफाई और गरमी पहुँचाने के लिए प्रयोग करते हैं। धूप स्नान के पश्चात् मेरु स्नान, कटि स्नान, मज्जन स्नान, पाद स्नान, वाष्प स्नान, ठंडा फव्वारा स्नान तथा एनिमा ये प्रधान प्रयोग हैं। इसके अलावा पानी से गीली पट्टी रखना, सिर धोना, आँख धोना, नाक-कान धोना आदि अन्य प्रयोग भी प्रचलित हैं।

मिट्टी चिकित्सा

मानव ने प्रागैतिहासिक काल से ही मिट्टी का प्रयोग चिकित्सा में किया है। वास्तव में शुद्ध मिट्टी, शुद्ध हवा और शुद्ध पानी की भाँति स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। विशेषज्ञों के अनुसार मिट्टी के बीस से अधिक प्रकार हैं। प्रत्येक प्रकार के अपने गुण और विशेषताएँ हैं। वैज्ञानिकों ने केवल एक प्रकार की मिट्टी में स्वास्थ्य के ऐलुमीनियम जैसे आवश्यक तत्व पाये हैं। नदियों और अन्य जलाशयों के तट अथवा तल की सफेद या लाल मिट्टी चिकित्सा में उपयोगी है। यह शरीर से मवाद और विषों को

निकाल बाहर करती है। मिट्टी को साफ करके महीन चूर्ण कर लेंना चाहिए। फिर उसे छानकर उसमें पानी मिलाकर एकसार कर लेना चाहिए। विभिन्न व्याधियों में मिट्टी की मात्रा उसके प्रयोग की अवधि, बारंबारता आदि अलग होती है। मिट्टी चिकित्सा कराते समय कुछ भी खाना या पीना वर्जित है। मिट्टी प्रयोग के बाद शरीर को शुद्ध पानी से धोना चाहिए। यदि ठंडे पानी से कंपकंपी छूटती है तो उसे गरम पानी से स्नान कराना चाहिये।

यांत्रिक चिकित्सा

इसमें हाथों से या सरल यांत्रिक उपायों से शरीर को अथवा उसके किसी अंग या किन्हीं अंगों को हिलाया या डुलाया जाता है। इसके अन्तर्गत मालिश, स्वीडिश व्यायाम, ऐक्यूप्रेशर और प्रतिवर्तविज्ञान (रिफ्लेक्सालॉजी) आदि सभी सम्मिलित हैं। यांत्रिक चिकित्सा में चार प्रकार की गतियां हैं–

- रोगी द्वारा अपनी सामर्थ्य से की गयी गति
- रोगी निष्क्रिय रहता है और एक कार्यकर्ता उसे गति देता है
- रोगी और सहायक दोनों के सतत् सहयोग से लायी जाने वाली गति और
- कार्यकर्ता द्वारा उत्पन्न तथा रोगी द्वारा प्रतिरुद्ध केंद्रापसारी गति। अकड़े हुए जोड़ों के उपचार में निष्क्रिय गतियाँ बहुत उपयोगी हैं, जिससे सिकुड़ी हुई संपुटिका स्नायुएं और कंहराएं खिंचती हैं। यांत्रिक चिकित्सा में रोगी को लिटाकर, बैठाकर या खड़ाकर परिभ्रमण, आनमन, पर्यावर्तन, अपवर्तन, उत्तानन, विमुखन और व्युत्क्रमण कराते हैं।

शारीरिक व्यायाम

शरीर के विकास और मानसिक सजगता के लिए टहलना और दौड़ना उपयोगी व्यायाम है। हड्डी के रोगियों को सरल से सरल व्यायाम करना चाहिए। सर्वांगासन, मत्स्यासन, शलभासन और अन्य योगासनों का अभ्यास किया जा सकता है। सूर्य नमस्कार जल्दी–जल्दी करना चाहिए और वृद्ध लोगों को धीरे–धीरे करना चाहिए।

ऐक्यूप्रेशर (सूचीनिपीड़न)

इसमें पैर के तलुए और हथेली के विभिन्न बिंदुओं पर दबाव डालते हैं। हथेली और तलुए का हर बिंदु शरीर के अन्य अंगों और भागों से संबंधित होता है।

सही श्वसन

श्वास–प्रश्वास ही जीवन है। लेकिन हममें से निन्यानबे फीसदी लोग सही तरीके से सांस लेना और छोड़ना नहीं जानते। हमें प्राणायाम का अभ्यास करके फेफड़ों में अधिकाधिक आक्सीजन ले जाना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास से फेफड़ों के निचले भाग की निष्क्रिय दीवारों को, जो कि निष्क्रियता के कारण मोटी हो चुकी होती है सक्रिय किया जा सकता है। इससे अस्थि–विकास में सहायता मिलेगी।

शराब से छुटकारा

नासिकरोड के जेलरोड स्थित शिवाजी नगर में रहने वाले डा० संभाजी राव निंबाळकर जी ने अब तक कई लोगों को शराब से हमेशा के लिए छुटकारा दिलाकर उनके परिवारों को सुखी बनाया है। डा० निंबाळकर जिला औरंगाबाद तहसील बैजापुर के शिरसगाव के मूल निवासी हैं, नौकरी के लिए नासिकरोड में निवास करते हैं। नौकरी करते एकबार निंबाळकर जी बहुत बीमार हो गए, उन पर अलग प्रकार के इंजेक्शन्स और गोलियों का बुरा असर हुआ था। इस उल्टे असर के कारण निंबाळकरजी तंग आ गए। ठीक इसी समय उनके पढ़ने में "दुष्परिणाम विरहित उपचार पद्धति" आयी। इस पद्धति के विषय में उनकी उत्सुकता बढ़ गयी। उन्होंने वैद्यकीय अध्ययन करने की ठान ली और कोंकण में जाकर आदिवासियों की उपचार पद्धति का अध्ययन किया। महाराष्ट्र में स्थित अनेक निसर्गोपचार केन्द्रों में जाकर, दवा के बगैर की जाने वाली उपचार पद्धति का अध्ययन किया। अनेक तथाकथित असाध्य बीमारियों का इलाज निसर्गोपचार पद्धति द्वारा हमेशा के लिए और गारंटी के साथ किया जा सकता है– ऐसा डा० निंबालकर जी का दावा है। नासिक के डॉ० सुभाष भंडारी के मार्गदर्शन में डॉ० निंबालकर ने वैद्यकीय अध्ययन कर एन० डी० (डिप्लोमा इन नेचुरोपैथी) की उपाधि भी प्राप्त की है। मलावरोध अनेक बीमारियों का मूल कारण है, ऐसा डॉ० निंबालकर मानते हैं।

भिन्न–भिन्न वनस्पतियों के प्रयोग से बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं ऐसा डॉ० निंबाळकर जी का विश्वास है। उन्होंने बवासीर के कई मरीजों का सफल इलाज ऑपरेशन के बगैर किया है।

डॉ० निंबालकरजी के इलाज से किसी प्रकार के दुष्परिणाम नहीं होते। मधुमेह का वे एक खास वनस्पति द्वारा उपचार करते हैं। कील–मुहाँसे, बाल झड़ना आदि शिकायतों को उन्होंने जल्द से जल्द दूर किया है। डॉ० निंबालकरजी ने नासिक में सिंहस्थ पर्व हेतु हिमालय तथा अन्य स्थानों से आये हुए साधु, बैरागी, गोसाई आदि से मिलकर उनसे विविध असाध्य बीमारियों पर वनस्पति का किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है, इसकी जानकारी हासिल की है।

पीठ दर्द : लाभकारी सुझाव

डा० डी० पी० सिंह, लखनऊ

आधुनिक जीवन शैली के कारण हर व्यक्ति आज इस समस्या से परेशान है। यह बीमारी रजोनिवृत्ति के बाद महिलाओं में आम तौर पर पाई जाती है परन्तु पुरुष भी इससे बचे नहीं हैं। व्यायाम न करने और पीठ का स्प्रिंग की तरह प्रयोग करने, जैसे बार बार झुकना या भार उठाने, के कारण पीठ की मांसपेशियों पर बहुत दबाव पड़ता है जिससे पीठ दर्द लगातार होता रहता है।

पीठ दर्द को अच्छी तरह जानने के लिए हमें पीठ की रचना (शारीरिकी) पर ध्यान देना चाहिए। पीठ में रीढ़ की हड्डी में तैंतीस कशेरुकायें होती हैं जो रीढ़ के चारों ओर की मांसपेशियों से ढ़की रहती हैं। दो कशेरुकाओं के बीच में मुलायम तन्तुओं के गद्दे जैसी डिस्क होती हैं ये शाक एब्जार्बर का काम करती हैं कभी कभी यह डिस्क कशेरुक दंडनाल (*स्पाइनल कैनाल*) की तरफ खिसक जाती है जिससे बहुत अधिक दर्द होता है, इसे आम तौर पर गृध्रसी या सियाटिका कहते हैं। रज्जु तन्तु मस्तिष्क से निकलता है तथा इन कशेरुकाओं के बीच से चलता हुआ नाभि के नीचे समाप्त हो जाता है। इस रज्जु तन्तु से तंत्रिकायें निकल कर शरीर के सभी भागों में फैली रहती हैं। इन्हीं तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क को दर्द की अनुभूति होती है। पीठ के निचले हिस्से में दर्द होने की संभावना अधिक होती है क्योंकि हमारे अधिकांश क्रियाकलापों जैसे बैठना, झुकना या कोई भार उठाना आदि से इस हिस्से पर बहुत अधिक तनाव पड़ता है।

पीठ दर्द का सम्बंध शरीर की अन्य बीमारियों जैसे मूत्र तंत्र की समस्याओं और स्त्री रोगों विशेषकर श्वेत प्रदर और अधिक मासिक आदि से हो सकता है। यदि पीठ दर्द के साथ बुखार, वजन में कमी, भूख लगना आदि लक्षण हों तो इसकी अच्छी तरह जाँच होनी चाहिए। ऐसे मामलों में आपको तुरन्त किसी विशेषज्ञ की सलाह लेनी चाहिये। पीठ दर्द के लक्षण स्वयं कुछ समय में समाप्त हो जाते हैं पर यह दुबारा भी हो सकते हैं। इस तरह के बहुत से लक्षणों को आप अपनी पीठ का सही उपयोग सीख कर दूर कर सकते हैं। मानसिक तनाव भी पीठ दर्द, का कारण हो सकता है। ऐसी स्थिति में आपको ऐसा लग सकता है कि कहीं आप पूरी तरह अपंग न हो जांय, जब कि ऐसा बहुत ही कम होने की संभावना होती है। यदि आप अपना मानसिक तनाव हटा दें तो दर्द स्वयं कम हो जाता है। ऐसे मामलों में योग बहुत सहायक होता है।

यदि पीठ दर्द के साथ साथ दर्द जांघ और पैर के पिछले हिस्से में खिसकता है तो यह किसी कशेरुका के स्थानच्युत होने के कारण हो सकता है। यह आम तौर पर भारी बोझ उठाने, छींकने या चोट से होता है। वृद्धावस्था में मांसपेशियाँ ढीली पड़ जाने के कारण यह बहुत सामान्य हो जाता है। इस प्रकार के दर्द को दूर करने के लिए पूर्ण विश्राम और हड्डी में खिंचाव (*ट्रैक्शन*) देने की आवश्यकता होती है। यदि दर्द के साथ पैर में कमजोरी या मल मूत्र त्याग करने में कोई तकलीफ हो तो यह खतरनाक लक्षण हैं।

उचित ढंग से न बैठने और काम करने के कारण पीठ दर्द होता है। मध्य आयु के व्यक्ति की मांसपेशियाँ ढीली पड़ जाती है। इस कारण वह कुछ झुक जाता है ऐसे लोगों में अचानक असाधारण दबाव या खिंचाव पड़ने से पीठ में नुकसान की संभावना बढ़ जाती है। पेट नीचे करके सोना, नीची और बहुत मुलायम आराम कुर्सी पर बैठना और लम्बे समय तक वाहन चलाना आदि आदतें छोड़ देनी चाहिए।

निम्न शारीरिक व्यायामों से आप अपनी मुद्रा ठीक रख सकते हैं-

- पेट नीचे करके लेटें और हाथ पीठ पर रखें। सिर ऊपर उठायें। प्रारम्भ में कठिनाई होगी परन्तु धीरे धीरे पैरों को साथ ही साथ उठाने का भी प्रयास करें।
- पीठ के बल लेटें दोनों नितम्ब एक साथ ऊपर उठायें व पैरों को सीधा रखें।
- पीठ के बल लेटें, घुटने ऊपर की ओर मोड़ें पैरों को जमीन पर रखे रहें और घुटनों को मोड़ लें। कंधे को जमीन पर जमाएं रख कर घुटनों को दाहिने और बायें हिलायें।
- सभी व्यायाम धीरे धीरे करना चाहिए जिससे दर्द न हो। व्यायाम नियमित रूप से करना चाहिए, पहले दिन में दो बार करें फिर धीरे धीरे संख्या बढ़ाते रहें।
- मुलायम बिस्तर पर न सोएं, कड़े बिस्तर पर पतला गद्दा रखें या जमीन पर सोयें।
- निचली मुलायम कुर्सियों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि बैठना ही पड़े तो पीठ की टेक न लगायें। इसके लिए एक छोटी तकिया या मुड़ी हुई तौलिया रख सकते हैं यदि आपको लम्बे समय तक बैठना हो तो बीच में उठकर शरीर को सीधा करें और थोड़ा टहल लें।
- जब तक डाक्टर की सलाह न हो हर प्रकार के बेल्ट आदि प्रयोग न करें। इनका केवल तभी प्रयोग करें जब आप बाहर जा रहे हों या ऐसा काम कर रहे हों जिससे पीठ पर बहुत दबाव पड़ता हो।
- रीढ़ पर किसी भी प्रकार से गर्मी पहुंचाने पर आराम मिलता है। गर्म पानी की बोतल का प्रयोग या गर्म नमकीन पानी से धोना भी लाभदायक है। भारी वस्तुयें उठाने से बचें यदि यह आवश्यक हो तो वस्तुओं को शरीर से इतना पास रखें जितना सम्भव हो, घुटनों को मोड़ लें और पैरों को सीधा करके भार उठायें। झुकने के लिए नितम्बों से झुके पीठ से नहीं।
- मोटे होने से यह समस्या बढ़ती है अतः अपना वजन कम रखें।

जोड़ों का दर्दः सरल उपचार

डा० उमेश पाण्डेय, इन्दौर

साधारण रूप से मनुष्य की आयु को १०० वर्ष माना गया है जिसमें ४० से ७० वर्ष की आयु ह्रास काल होती है। तदुपरान्त जरावस्था प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में धातु, वीर्य इन्द्रियबल तथा उत्साह का अधिकाधिक हनन होने लगता है परिणामस्वरुप मनुष्य को अनेक व्याधियाँ घेर लेती हैं। इसी अवस्था के कुछ पहले से ही कई मनुष्यों में एक अत्यन्त कष्टप्रदजोड़ों का दर्द हो जाता है। "गठिया-बायं" इत्यादि अन्य रोग इसी के प्रकार के हैं।यह एक वातजनित रोग है जो मुख्यतः जोड़ों के बीच यूरिक अम्ल के जमा हो जाने के परिणामस्वरूप अथवा जोड़ों के बीच भरे हुए द्रव की मात्रा की कमी अथवा उसके घनत्व में परिवर्तन होने के कारण प्रकट होता है। विरुद्ध आहार-विहार का सेवन, व्यायाम न करना तथा जठराग्नि का मंद होना, इसके मुख्य कारण हैं। इसके रोगी में जोड़ों के दर्द व बदन दर्द व संधिविकृति के साथ-साथ बदन दर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, ज्वर, अपचन इत्यादि लक्षण होते हैं।

वैसे जोड़ों तथा घुटनों में दर्द होने के और भी कारण और प्रकार हैं मसलन रह्यूमेटाईड आर्थ्राइटिस जिसके अन्तर्गत पहले छोटे-छोटे जोड़ों में दर्द शुरू होता है और वहाँ से यह दर्द विभिन्न बड़े जोड़ों तक फैल जाता है। इसके अलावा दूसरा है "टी० बी० का गठिया बाय" (ट्यूबरक्युलम आर्थ्राइटिस), जो कि मुख्यतः टी० बी० के मरीजों में देखने को मिलता है। जोड़ों का दर्द रात्रि में विशेषकर होता है।

जोड़ों के दर्द का एक प्रकार है "हड्डीकाबाय" (आस्टियो आर्थ्राइटिस), इसके अन्तर्गत घुटने, कंधे आदि में विशेषकर दर्द होता है और इनका यथा रूप उपचार न होने पर यह शरीर के अन्य जोड़ों में भी फैलने लगता है। इसके अलावा कुछ व्यक्तियों में विभिन्न बीमारियों के एक साथ हो जाने से भी, जोड़ों में दर्द होने लगता है। कभी-कभी हिस्टीरिया अर्थात् मिर्गी के परिणामस्वरूप भी जोड़ों में दर्द होता है, इसे "हिस्टीरिकल जाइन्ट्स आर्थ्राइटिस" कहते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार गर्म पदार्थों को खाकर उसके तत्काल बाद स्नान करने से वायु कुपित होकर जोड़ों में दर्द पैदा कर देती है। इसी प्रकार अधिक खट्टे पदार्थों के सेवन से भी यह व्याधि होती है।

इस प्रकार किसी भी कारण से जोड़ों में दर्द हो सकता है, किन्तु इसका सर्वोपरि कारण तो बुढ़ापा ही है। प्रायः यह देखा गया है कि जोड़ों का दर्द नानाप्रकार के उपचारों के बाद भी यथावत रहता है और रोगी को फायदे के बजाय नुकसान उठाना पड़ता है। इसी बात को मद्दे नज़र रखते हुए नीचे कुछ अति सरल अनुभूत उपचारों का वर्णन पाठकों के लाभार्थ किया जा रहा है। इन उपचारों के माध्यम से शत-प्रतिशत तो नहीं, (क्योंकि जोड़ों का दर्द पूर्णरूपेण जाता नहीं है) किन्तु अत्यधिक लाभ होता है।

सर्वप्रथम रोगी को जोड़ दर्द निवारक व्यायाम करने चाहिये। मसलन पाँव के जोड़ों के दर्द के निवारणार्थ उसे तख्त पर बैठकर अपने पैरों को सामने की ओर बिल्कुल सीधा करके पैर की अंगुलियों को अधिक से अधिक खोलने का प्रयास करना चाहिए और पुनः उन्हें ढीला करके फिर तानना चाहिए। यह क्रिया २-३ मिनट तक करें। इसके पश्चात् एड़ी के जोड़ को बार-बार अपनी ओर (पाँव को सीधा रखते हुए ही) तथा अपने से दूर करते हुए चलावें। यह क्रिया दो ही मिनट तक करें। इसके पश्चात् समतल ज़मीन पर लेटकर पैरों को सिकोड़ें तथा फैलावें। यह क्रिया भी दो मिनट तक करें। ऐसा करने से पैर के जोड़ों के दर्द में काफी आराम मिलता है।

हाथ के जोड़ों के दर्द निवारणार्थ हाथ की अंगुलियों को भी उनकी अधिकतम सीमा तक फैलाकर मुट्ठी बाँधनी चाहिये। तदुपरान्त मुट्ठी को बांधे हुए ही "क्लॉक वाइज़" एवं "एण्टी क्लॉक वाइज़" घुमाना चाहिये। प्रत्येक क्रिया २-२ मिनट करना ही पर्याप्त है।

इसी प्रकार अन्य जोड़ों से सम्बन्धित व्यायाम करने से जोड़ों के दर्द में काफी फायदा होता है।

- घुटनों के अत्यधिक दर्द को रोकने के लिये मेंहदी व अरण्ड के पत्तों को पीसकर भी घुटनों पर लेप किया जाता है।
- तिल्ली की खली को पानी में पकाकर घुटनों पर बाँधने से भी उनके दर्द में अत्यधिक लाभ होता है।
- इसी प्रकार अरण्ड की जड़ को पीसकर तथा धतूरे के पत्तों को गर्म करके बांधने से भी लाभ होता है।
- जो व्यक्ति रात में सोने के पूर्व पुराना खोपरा खाता है और इसके बाद जल नहीं पीता है, उसे संधिवात नहीं होता है।
- राई के तेल में कपूर मिलाकर मालिश भी जोड़ों के दर्द पर मुफीद है।
- इसी प्रकार १०० वर्ष पुरानी ईंट को बारीक पीसकर तिल के तेल में मिलाकर धूप में बैठकर मालिश करना भी जोड़ों के दर्द पर मुफीद है।

संधिशोथ की होमियोपैथिक चिकित्सा

डा० पी० अली, पट्टांबि

संधिशोथ का अर्थ 'जोड़ों की सूजन' है। इनके प्रकार हैं कंकाल तंत्र हड्डियों से बना है और यह मानव के शरीर को आकार और सहारा देता है। हड्डी एक जीवित ऊतक है और इसकी उत्तमता अनेक बातों पर निर्भर करती है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को समग्र रुप में प्रभावित करती है। खनिज पदार्थों, विशेष रूप से कैल्शियम और फास्फोरस का उचित संतुलन, परावटु सरीखी ग्रंथियों के हारमोन स्राव, वृक्कीय क्रियाएं, औषधियाँ और आनुवंशिक घटक हड्डियों के स्वास्थ्य और रोग को प्रभावित करते हैं।

संधिशोथ का अर्थ 'जोड़ों की सूजन' है। ये अनेक प्रकार की होती हैं।

तीव्र संधिशोथः इसका आक्रमण तेज होता है तथा इसमें दर्द, जलन, लाली और सूजन होती है।

प्रत्यूर्जता संधिशोथः रोगी जिस पदार्थ के प्रति ऐलर्जिक है उसके द्वारा उत्पन्न संधिशोथ को प्रत्यूर्जता संधिशोथ कहते हैं। कभी-कभी यह ऐसे इंजेक्शनों से भी हो जाता है जिसके प्रति रोगी संवेदी है।

चिरकालिक संधिशोथः यह वह रोग है जो वर्षों पीछा नहीं छोड़ता।

अपविकासी संधिशोथः यह बढ़ी हुई उम्र के लोगों में पाया जाता है जिन्हें उपास्थि की हानि होती है। इसमें संधि की जकड़न और विकृति तक हो सकती है।

गोनोरियल संधिशोथ : उपदंश के तीव्र संक्रमण के गौण प्रभाव के रूप में उत्पन्न होता है।

संधिशोथ (गाउटी संधिशोथ) : यह गठिये अथवा यूरिक अम्ल के अव्यवस्थित चयापचय (मेटाबोजिज्म) से होने वाली व्याधि है। यह प्रायः किसी एक जोड़ अंगूठे, घुटने आदि को प्रभावित करती है।

हीमोफीलियाग्रस्त संधिशोथ : यह हीमोफीलिया होने पर उसके गौण प्रभाव के रूप में होता है।

रजोनिवृत्ति संधिशोथ : कुछ स्त्रियों को रजोनिवृत्ति के संलक्षण के रूप में हो जाता है।

क्षयजन्य संधिशोथ : तपेदिक के संक्रमण के गौण प्रभाव से उत्पन्न होता है।

आमवातीय संधिशोथ : यह आमतौर पर पाया जाता है जिसमें प्रायः एक साथ अनेक जोड़ चिरकालिक तौर पर प्रभावित हो जाते हैं जिससे उन जोड़ों में दर्द होता है और उनकी गति अवरुद्ध हो जाती है। इसका हमला हफ्तों, महीनों या वर्षों तक रह सकता है हालांकि तीव्रता एक जैसी नहीं रहती। इसमें कुछ अभागे रोगी विकलांग हो जाते हैं।

उपचार

संधिवात के उपचार से पूर्व रोगी का विस्तृत विवरण प्राप्त कर लेना चाहिए। वस्तुपरक एवं विषय परक तथा दुर्लभ एवं विशिष्ट लक्षणों का विचार करा लेना चाहिए। पारिवारिक इतिहास का भी ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इससे कुछ दुराग्रही रोगियों की पूर्व प्रवृत्ति को समझने में सहायता मिलती है।

चूँकि इस रोग में अनेक कारणों का समावेश है अतः अलग-अलग रोगियों के लिए रोग की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार अनेक दवाओं की आवश्यकता होगी। जिन औषधियों का प्रयोग अत्यधिक होता है उनमें कोल्चिकम, रुस टॉक्स, केलेकेरिया फ्लोर और फ्लोरिक अम्ल उल्लेखनीय हैं।

समुचित उपचार के साथ कुछ सहायक उपाय और अच्छे परिणाम देते हैं। शारीरिक और मानसिक विश्राम परमावश्यक है। विश्राम के बाद व्यायाम कराना चाहिए। संधिशोथ के रोगी को व्यायाम और विश्राम दोनों की आवश्यकता है। विश्राम से जोड़ की सूजन कम होती है जबकि व्यायाम जोड़ों और पेशियों की क्रिया बनाये रखने और धीरे-धीरे बढ़ती विकलांगता को दूर करने के लिए आवश्यक है। गुनगुने या गरम पानी की नांद में स्नान भी आवश्यक होता है।

वर्जनीय

- नम एवं हवाबंद स्थानों में न रहें।
- गीले वस्त्र न पहनें।
- अत्यधिक गरमी से बचें।
- रात्रि जागरण न करें।
- अधिक उत्तेजित न हों।

बुढ़ापे में जोड़ों का दर्द

वैद्य बाल मुकुन्द शुक्ल, सोनभद्र

संधिशोथ अर्थात जोड़ों की सूजन, वृद्धावस्था का एक प्रमुख रोग माना जाता है। हड्डियाँ शरीर के ढाँचे का निर्माण करती हैं और जोड़ इनको गति प्रदान करते हैं। दो या दो से अधिक हड्डियों के परस्पर मिलने या जुड़ने को ही संधि कहते हैं। खोपड़ी की हड्डियों की संधियों के अतिरिक्त सारी संधियाँ गतिमान होती हैं। संधि पर हड्डियों को एक साथ जोड़े रखने का कार्य मज़बूत श्वेत तंतुओं के समूहों द्वारा सम्पन्न होता है, जिन्हें स्नायु कहते हैं। शरीर में कई प्रकार की संधियाँ हैं। इन संधियों में वृद्धावस्था के पूर्व भी रोग हो सकते हैं किन्तु वृद्धावस्था में अधिक होते हैं। संधियों की सूजन का प्रमुख कारण पूर्व काल से किये गये अप्राकृतिक अनुपयुक्त आहार–विहार को ही दिया जा सकता है, क्योंकि रोगों के उद्भव का कारण आहार–विहार को ही माना गया है, जैसा कि चरक ने लिखा है–

येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत्।

संधिशोथ आकस्मिक न होकर काफी दिनों से शरीर के अन्दर एकत्र हुये विजातीय पदार्थ के कारण होता है। संधियों के नीचे विजातीय पदार्थ जमा होता रहता है, रुकावट या दबाव पड़ने पर उसमें पीड़ा होती है तथा सूजन भी आ जाती है। वृद्धावस्था में होने वाला यह रोग काफी महत्वपूर्ण है, इसमें वृद्धों के पैरों की संधियों में विशेष रूप से दर्द होता है तथा सूजन भी आ जाती है। संधियों में कड़ापन आ जाता है। बाहरी आघात या चोट से भी संधियों में सूजन आ जाती है। वृद्धावस्था में संधियों के सूजन का प्रमुख कारण अपचन, गैस बनना, बराबर कब्ज़ रहना आदि भी माना जाता है।

किसी भी संधि पर सामान्य सीमा से बाहर जबर्दस्ती गति करना भी हानिकारक होता है, इसलिये वृद्धावस्था में विशेष सावधानी रखनी चाहिये। आकस्मिक मरोड़ से संधियों में विकृति आ सकती है, अतः वृद्ध को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे उनकी संधियों पर अनावश्यक भार पड़े।

सावधानी और उपचार

वृद्धावस्था ढलान की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति को बड़ी ही सावधानी रखनी चाहिये। इस आयु में व्यक्ति प्रकृति के अनुरूप रहकर अपना जीवन व्यतीत करे तो वह आजीवन सुखी रह सकता है। जोड़ों पर यदि सूजन आ गई है तथा दर्द हो रहा है तो निम्नलिखित उपायों को करना चाहियेः–

- सूजन वाले स्थान को वाष्प स्नान भी दिया जा सकता है। इसके लिए भगोने में उबाले हुए पानी को सूजन वाले स्थान से १ फीट नीचे रखकर भाप लें। यह क्रिया दिन में तीन बार करें। समय १० से १५ मिनट तक।
- प्रातः व सायं यदि हाथों की संधियों में सूजन है, तो दोनों हाथों को क्रमशः धीरे–धीरे १०–१० बार दोनों ओर से घुमायें। यदि सूजन पैर की संधियों में हो तो सीधे पीठ के बल लेटकर दोनों पैरों को धीरे–धीरे १०–१० बार दोनों ओर से घुमायें। विशेष कमजोरी हो तो यह क्रिया न करें।
- किसी आयुर्वेदिक तेल की मालिश भी धीरे–धीरे कर सकते हैं।
- सूजन वाले स्थान का धूप स्नान लेना बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। इसके लिए प्रातः ९ से ११ के मध्य या दोपहर के बाद २ से ४ बजे तक एकांत में जहाँ सूर्य की रोशनी सीधी पड़ती हो वहाँ पर पूरे शरीर को सूती कपड़े से ढककर बैठना चाहिए। सूजन वाले भाग को खुला रखना चाहिए या महीन सफेद कपड़ा या केले का पत्ता रखना चाहिये। यह क्रिया ३० मिनट तक नित्य करें। पसीना आने पर पोंछ दें। बीच में २ गिलास गुनगुना पानी धीरे–धीरे पियें। सिर पर भीगी तौलिया रखनी चाहिए। इस क्रिया से जोड़ों में रुका हुआ मल बहुत तेजी से निकलता है।
- यदि चलने फिरने योग्य हैं तो नित्य प्रातः व सायं अपनी शक्ति के अनुसार ३–४ मील टहलें। वृद्धावस्था में टहलना उत्तम व्यायाम है।

उपर्युक्त क्रियाओं के अतिरिक्त यदि वृद्ध लोग निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें तो यह रोग होगा ही नहीं यदि हो भी गया है तो धीरे–धीरे मुक्ति मिल जायेगी इसके लिए–

- मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर अनावश्यक चिन्ता, द्वेष, ईर्ष्या, विषाद से मुक्त रहें। वाद–विवाद तथा अनावश्यक लड़ाई–झगड़ों में न पड़ें।
- जो कार्य कर सकते हैं, वही करें, जबर्दस्ती कोई कार्य न करें।
- मर्यादित व संतुलित आहार लें। वृद्धावस्था में भोजन वृद्धि के लिये नहीं अपितु ऊतकों की मरम्मत के लिये लिया जाता है। भोजन की पौष्टिकता पर ध्यान न देकर अपनी पाचन शक्ति पर ध्यान देना चाहिए। जो भी खायें वह ठीक प्रकार से पचकर रसोत्पत्ति करके मलरूप में शरीर से बाहर हो जाये। चोकरदार आटे की रोटी, कन समेत चावल, छिलके युक्त मूँग की दाल, हरी सब्जियाँ, सलाद पर्याप्त मात्रा में, मक्खन निकाला हुआ दूध, शहद ठण्डे पानी या दूध के साथ, मौसमी फलों का सेवन करना चाहिये। अम्लकारक पदार्थों का सेवन कदापि न करें, अन्यथा रोग बढ़ जायेगा।
- संयमित भोजन करें, अधिक भोजन रोग का कारण बनता है।

शेष पृष्ठ ३७ पर

सन्धिवात या आर्थ्राइटिस

का होमियोपैथिक उपचार

डा० रवीन्द्र प्रकाश, कानपुर

यह एक अत्यन्त जटिल रोग है जिसे संधिशूल एवं संधिशोथ भी कहते हैं। प्राचीन मत के अनुसार संधिवात को वायु रोगों के अन्तर्गत माना गया है। किन्तु आधुनिक विज्ञान में इस विषय पर विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत दिए हैं।

जीर्ण कोष्ठ बद्धता- पाचनक्रिया सही न होने के कारण आंत्र के अन्दर दीर्घ काल तक मल रहने से उसका विष शरीर में संग्रहीत हो जाता है, जो संधिवात रोग को उत्पन्न करता है।

रोगों के विष और जीवाणुओं के आक्रमण के फलस्वरूप शरीर के जोड़ों में शोथ (सूजन) उत्पन्न हो जाता है जैसे- टौन्सिल की सूजन, पायरिया, क्षय, सूजाक आदि रोगों में उपांत्रशोथ तथा बैसिलरी डिसेन्ट्री के बाद कभी-कभी संधियों में शोथ हो जाता है। किसी बढ़े हुए रोग में दवा देने के कारण जब रोगविष शरीर के अन्दर स्थिर हो जाता है तब यही विष संधिवात रोग को जन्म देता है। शरीर में एकत्रित जीर्ण रोग विष ही अनेक श्रेणियों के वात रोग उत्पन्न करते हैं जब यह विष शरीर में फैल जाता है तो उसके परिणाम स्वरूप मरीज को ज्वर भी आ सकता है। इस अवस्था को एक्यूट रह्यूमैटिज्म कहते हैं। जब इस विष द्वारा तन्तु प्रभावित होते हैं तब इसे मस्क्यूलर रह्यूमैटिस्म कहते हैं और जब यह विष अस्थियों को प्रभावित करते हैं तो इस स्थिति को सन्ध्यस्थिशोथ (आस्टियो आर्थ्राइटिस) कहते हैं। इस विष के द्वारा जब विशेष रूप से शरीर के जोड़ प्रभावित होते हैं, तब इस स्थिति को संधिवात कहते हैं।

नमी प्रदेशों में रहने वाले लोगों में यह रोग अधिक होता है।

यह रोग पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होता है। २० से ४० वर्ष की स्त्रियाँ, प्रायः इस रोग से ग्रसित होती हैं, इसमें भी अधिकता बहुप्रसूता स्त्रियों की होती है।

इस रोग से ग्रसित स्त्रियाँ जब गर्भवती होती हैं तो उस समय इस रोग का वेग प्रायः समाप्त हो जाता है परन्तु प्रसव के बाद रोग के लक्षण पुनः पहले से भी तीव्र अवस्था में दिखने लगते हैं।

कुछ रोगियों में प्रारम्भिक अवस्था में ही हाथ-पांव की संधियों में कुछ समय के लिए सूजन और नीलापन, स्पर्श का सहन न होना, अत्यधिक पसीना, हृदय की तीव्र गति, रक्त न्यूनता अथवा हाथ और पैर की अंगुलियों के जोड़ों में शोथ और पीड़ा के लक्षण दिखने लगते हैं। बहुत से रोगियों में संधिशूल अतितीव्र एवं ज्वर सहित होता है। किसी-किसी में शूल और ज्वर का वेग मंद एवं विषम होता है। इस रोग में सर्वप्रथम हाथ एवं पैर की संधियाँ प्रभावित होती हैं। इसके बाद कलाई, टखना, कोहनी, घुटना, कन्धा, हनुसंधियाँ आदि प्रभावित होते हैं। बीच-बीच में रोग का वेग कुछ काल के लिए कम हो जाता है और फिर पुनः बढ़ जाता है।

अन्य लक्षण

- इस रोग में मुख्य विशेषता यह है कि जब कोई संधि प्रभावित होती है तो दोनों ओर की संधियाँ प्रभावित होती हैं।
- इस रोग में पीड़ा दिन की अपेक्षा रात में अधिक होती है।
- जब कोई नई संधि प्रभावित होती है तो कुछ समय के लिए ज्वर बढ़ जाता है।

रोग की जीर्ण अवस्था के लक्षण : उपरोक्त लक्षणों का रोगी जब अनियमित जीवन एवं अव्यवस्थित आहार-विहार करता है तो कुछ समय के बाद आक्रांत संधि के समीपवर्ती कोमल तन्तु शोथमय हो जाते हैं, यह धीरे-धीरे बढ़कर संधि के कोष को प्रभावित करते हैं। कुछ समय बाद वहाँ की कार्टिलेज (मृदुअस्थियाँ) शोथमय हो जाती हैं और धीरे-धीरे शोथ चारों ओर बढ़ जाता है और फिर कार्टिलेज नष्ट हो कर वहाँ व्रण हो जाते हैं फलस्वरूप कुछ वर्षों बाद संधि के दोनों ओर के कार्टिलेज पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं और अस्थियाँ नग्न हो जाती हैं और अन्त में ये (संधि के जोड़ की अस्थियाँ) जुड़ जाती हैं तथा प्रभावित संधियों की अस्थियाँ, अस्थिबन्धन, मांसपेशियां और त्वचा धीरे-धीरे क्षीण हो जाती हैं।

संधिवात रोग अवस्था के अनुसार निम्न प्रकार के होते हैं-

आमवातः ज्वर प्रायः नियमित रहता है। इसका आक्रमण अधिकांशतः छोटी आयु में होता है प्रौढ़ावस्था में कम।

पाइमियाः इसमें बहुत सी संधियाँ प्रभावित होती हैं। ज्वर विसर्गी या अविसर्गी एवं प्रायः शीत से बढ़ने वाला होता है।

वात रक्तः यह प्रायः वृद्धों को होता है। इसमें अधिकतर ज्वर नहीं होता। इसमें सबसे पहले पाँव की संधियाँ प्रभावित होती हैं।

चिकित्सा

वस्तुतः इस रोग की कोई विशेष औषधि नहीं है। रोग को कुछ काल दबाने के लिए तो अनेकानेक औषधियाँ हैं किन्तु मूल रूप से रोग नाश के लिए यदि कोई दवा है तो वह केवल रोगी के आहार-विहार एवं आचार-विचार में परिवर्तन है।औषधि के द्वारा चिकित्सा के लिए हम कुछ मुख्य होम्योपैथिक औषधियां, संधिवात रोग के लक्षणानुसार लिख रहे हैं।

अर्जेण्टम मेटालिकम्– जोड़ों, कोहनियों और घुटनों पर रोग का आक्रमण होता है। पैरों में कमजोरी, पैर कांपना, एड़ी फूल जाना, उंगलियों में कंपन, पीठ में दर्द रहना, और कुबड़ापन।

कॉलचिकम्– संधि वात का दर्द एक जोड़ से शुरू होकर दूसरे जोड़ में चला जाता है, दर्द शाम के वक्त और हिलने–डुलने से ही बढ़ जाता है। रोग वाली जगह सूजन के कारण लाल–सुर्ख दिखाई देती है और सूजन आ जाती है। घुटने के वात में कॉलचिकम्– ३ से ६ शक्ति (पोटेन्सी) का सेवन करने और लगाने से बहुत जल्दी फायदा पहुँचता है।

ऐण्टिमोनियम क्रूडम्– जिसका अंगुलियों पर ही ज्यादा हमला होता है और उसके साथ ही पेट में भी गड़बड़ी रहना, रात में सोने के बाद या सवेरे कंधे और पीठ जकड़ी या सटी हुई–सी मालूम होना। झुकने और सिर नीचा करने से दर्द बढ़ता है और जीभ दूध की तरह सफेद होती है।

ऐनाकार्डियम ओरियेण्टेलि– रोगी के कंधे में जकड़ या अकड़ जाने जैसा दर्द होता है। कंधा जरा सा झुकाते ही दर्द बढ़ता है। गर्दन में दर्द व अकड़न की वजह से गरदन हिलाने में कष्ट। रोगी समझता है कि उसके शरीर के चारों तरफ पट्टी बंधी है। रीढ़ के अन्दर हिलने–डुलने से दर्द मालूम होता है।

लिडम पैलस्टर– नए वात में गांठ वाली जगह फूलती है और रोग वाली जगह गर्म हो जाती है पर ज्यादा लाल भी नहीं होती।

दर्द की प्रकृति खोंचा मारने जैसी और टपक की तरह दर्द होता है जो जरा सा हिलने डुलने पर बढ़ जाता है। शराबी के वात रोग में यह दवा ज्यादा फायदा करती है, इसका दर्द एक गांठ से दूसरी गांठ में जगह बदला करता है। घुटने की साइनोवाइटिस में भी यह दवा फायदा करती है जिसमें दर्द नीचे से ऊपर की तरफ जाता है।

मक्युरियस वाइवस– रोगी दर्द वाली जगह खुला रखना चाहता है और रात में इसकी तकलीफ बढ़ती है। इस दवा में एक विशेष लक्षण है कि बहुत ज्यादा पसीना आने से बीमारी घटती है।

रसटाक्स– इसमें गर्मी से दर्द घटना और सर्दी से बढ़ना तथा पहली बार हिलने–डुलने से और चुपचाप पड़े रहने से दर्द बढ़ता है। बरसात और जाड़े में भी बीमारी बढ़ती है। जरा सी ठंडी हवा लगते ही रोग वाली जगह दर्द होने लगता है। कमर के वात में भी यह दवा फायदा करती है।

रोडोडेण्ड्रान– रस टाक्स की तरह बरसात और जाड़ों में अर्थात् थोड़ी सी सर्दी पड़ते ही तकलीफ बढ़ जाती है। दस–पाँच दिन तक कुछ मालूम नहीं होता उसके बाद एकाएक ठंड लगकर या पैर का अंगूठा फूलकर वात रोग हो जाता है।

कैल्मिया लैटिकोलिया– जहाँ ऐसा दिखाई दे कि वात का दर्द ऊपरी अंग से प्रारम्भ होकर क्रमशः नीचे की ओर उतरता है– कैल्मिया शीघ्र फायदा करती है। इसका दर्द तेजी से जगह बदलता है। इस स्थान बदलने वाले दर्द के साथ हृत्पिण्ड की कोई बीमारी मौजूद हो या हृत्पिण्ड की बीमारी हो जाए तो कैल्मिया उसकी एकमात्र दवा है। इसका दर्द बाएं हाथ के ऊपर से नीचे की ओर दौड़ता है।

रुटा और स्टिकटा– दोनों हाथ की कलाई और दोनों पैरों की एड़ी में दर्द होता है। हाथ–पाँव की छोटी संधियों के दर्द में भी लाभकारी है।

बेंजोईकम्– अंगूठे व अंगुलियों में सूजन से लाली व दर्द के लिए

रेक्टिया रेसिमोसा– अधिकतर स्त्रियों में संधियों में सूजन व छूने पर असहनीय दर्द जब प्रसव के बाद शुरु हो।

कुछ अन्य उपयोगी बातें

रक्त में यूरिक एसिड की वृद्धि न होने देने के लिए स्वस्थ अवस्था में व्यायाम करना चाहिए। रक्त का क्षारत्व घट जाना ही वात रोग का प्रधान कारण है। अतः भोजन में यथेष्ट रूप से कैल्शियम एवं फास्फोरस की व्यवस्था करनी चाहिए, अन्यथा प्रभावित संधियों के अन्दर की अस्थियाँ भीतर ही भीतर खराब हो जाती हैं। मीठे फल जैसे– खजूर, खूबानी, सेब अंगूर, नारंगी, अनार, सूखे मेवे जैसे– किशमिश, काजू, अखरोट बादाम और हरे शाक या शाक रस, आलू, टमाटर, उबली सब्जी, सलाद, मूंग की दाल, चावल का मांड, बिजौरा नींबू, शुद्ध दूध, चोकर युक्त आटा और मधु। आहार अधिकांशतः स्निग्ध, स्वादु, अम्ल–लवण रस वाला पौष्टिक, सुपाच्य एवं मृदु, विटामिन युक्त होना चाहिए। जीर्ण रोगी के लिए पनीर एवं गूलर का प्रयोग श्रेष्ठ है।

अम्ल धर्मी खाद्य– जैसे चाय, काफी, कोको, तम्बाकू, मद्य, मांस, बर्फ, दही, अत्यधिक नमक, मसाले, तले हुए पदार्थ, चीनी आदि का सेवन त्याज्य है।

रोग प्रकोपकाल में सावधानियाँ–

- रोगी को सदा शीत से बचाए रखना चाहिए।
- संधियों पर सेंक तथा सदा गर्म रखने का प्रयास करना।
- रोगी को कब्ज नहीं होना चाहिए।
- रोगी को उचित व्यायाम अवश्य करना चाहिए।
- गर्म पानी में नमक डालकर स्नान करना चाहिए।
- मरीज को चिन्ता, द्वेष आदि मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं से दूर रहना चाहिए।
- धूप में बैठकर सेंक करते समय रोगी को अपने नेत्रों पर रंगीन चश्मा अवश्य लगाना चाहिए।
- सेंकने वाले पदार्थ या यंत्र का ताप तथा सेंकने का समय शनैः–शनैः बढ़ाना चाहिए। सेंकने के बाद रोगी को वस्त्र से ढक देना चाहिए।
- निरोग होने तक बिस्तर पर पूर्ण विश्राम करना चाहिए, अन्यथा हृदय विकृत हो सकता है।

इसके अतिरिक्त रोगी को अपनी इच्छानुसार निम्न आसनों एवं क्रियाओं के माध्यम से व्यायाम करना चाहिए।

अंगुष्ठ पद्म शन, जानुशिरासन, उत्तानपाद आसन, शीर्षासन आदि करना चाहिए।

टहलना, सीढ़ी चढ़ना, साईकिल चलाना, टेनिस खेलना स्केटिंग करना आदि।

गीना–पिरोना, बगीचा लगाना, चित्रकला, टाइप करना, पियानो बजाना, तबला बजाना आदि व्यायाम करना चाहिए।

फ्लुओरोसिस : एक अस्थि रोग

वैद्य के० एस० पिल्लई, तिरुवल्ल, केरल

फ्लोरीन प्रचुरता की दृष्टि से तेरहवाँ और पृथ्वी की पपड़ी में ०.०६ से ०.०९ प्रतिशत तक पाया जाने वाला तत्व है। नदियों, झीलों और सागर का यह एक सामान्य घटक है। झीलों और सोतों में यह ०.३ प्रति सहस्र भाग पाया जाता है। किन्तु भूजल में इसकी मात्रा अधिक होती है जो उन शिलाओं पर निर्भर है जिनसे होकर पानी गुज़रता है। अब यह बात निर्विवाद रूप से ज्ञात हो गयी है कि ०.६ प्रति सहस्र भाग से अधिक फ्लोरीनयुक्त जल के दीर्घकाल तक सेवन से हड्डियों और दाँतों पर कुप्रभाव पड़ता है जिनसे वे फ्लुओरोसिस नामक रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। पेट में गया फ्लुओराइड अयन तत्काल जठरांत्र पथ में अवशोषित हो जाता है और शीघ्र ही दांतों और हड्डियों द्वारा ले लिया जाता है जिससे इन खनिजीभूत ऊतकों के हाइड्राक्सिल अयन विस्थापित हो जाते हैं। पेट में गये फ्लुओराइड का ५०% हड्डियों और दाँतों में जमा हो जाता है। शेष मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है।

फ्लोराइड के कुप्रभाव बच्चों, जिनकी हड्डियों का विकास हो रहा होता है, उन गर्भवती महिलाओं तथा खेती करने वाले मज़दूरों में जो अत्यधिक पानी पीते हैं, देखे जाते हैं। फ्लोराइड दांतों के दंतावरक को नष्ट कर देता है जिससे दांत चितेदार हो जाते हैं। फ्लोराइड एक ऐसा खनिज है जिसे हड्डियों की तलाश रहती है और जहाँ पहुँचते ही यह अस्थि की संरचना को परिवर्तित करने लगता है। हड्डी का घनत्व बढ़ने लगता है, हड्डी का मटीरियल असामान्य रूप से जमा होने लगता है तथा कैल्सीकरण के कारण स्नायु और जोड़ कड़े और अचल हो जाते हैं। फ्लुओरोसिस की गम्भीरता अनेक बातों पर निर्भर करती है जैसे पीने के पानी में फ्लोराइड की मात्रा, कुल दैनिक फ्लोराइड सेवन, सेवित फ्लोराइड की घुलनशीलता, वय, पोषाहार सेवन, व्यक्तिगत जैविक प्रतिक्रिया, तनाव, अन्य खनिजों तथा लेश तत्वों के प्रति ग्रन्थियां, जलवायु, पीने के पानी की कठोरता और क्षारीयता, जठरांत्र पथ का पीएच और गुर्दे की क्रियाएं। भारत में कुपोषण, कैल्शियम की कमी और कठोर शारीरिक परिश्रम का भी प्रभाव फ्लुओरोसिस की वृद्धि पर पड़ा है।

आज यह स्थिति है कि भारत में लगभग ढाई करोड़ व्यक्ति पीने के पानी में फ्लुओराइड की अधिकता से फ्लोराइड विषाक्तता के शिकार हैं और तेरह राज्यों को फ्लुओरोसिस का क्षेत्र घोषित कर दिया गया है।

फ्लुओरोसिस का एक अत्यन्त तीव्र रूप भी है जिसे 'जीनु वाल्गम' कहते हैं। इसमें 'अपंगकारी संहत जानुता' संलक्षण रहता है, रीढ़ के मृदु जोड़ सख्त हो जाते हैं और आंध्र प्रदेश में तो अंगों की हड्डियों में आस्टियोपोरोसिस भी पायी गयी है। फ्लुओरोसिस में जोड़ों पर हड्डियों की मुक्त गति बाधित हो जाती है जिससे रोगी आंशिक या पूर्ण रूप से निश्चल हो जाता है।

फ्लोराइड महाभारत

फ्लोराइड युद्ध शुरू हुए काफी समय बीत चुका है लेकिन यह एक अंतहीन युद्ध प्रतीत होता है। आज हमारे देश में वैज्ञानिकों के अनेक वर्ग हो गये हैं। एक वर्ग पीने के पानी का फ्लोराइडीकरण चाहता है, दूसरा नहीं। एक वर्ग टूथपेस्ट में फ्लोराइड चाहता है, दूसरा उसके वि रुद्ध है, कोई पीने के पानी से फ्लोराइड को निकाल देना चाहता है और कोई ऐसा करना असम्भव मानता है और गहरे भूजल को पीने के लिए उचित बताता है और यह लड़ाई जारी है। बहरहाल भारत सरकार द्वारा १९८६ में नियुक्त प्राविधिक आयोग फ्लुओरोसिस नियंत्रण को अपना एक महत्वपूर्ण लक्ष्य मानता है। विगत पांच वर्षों में आठ राज्यों के १८ जिलों में 'फ्लुओरोसिस नियंत्रण अभियान' ५०,००,००० लोगों तक पहुँच सका है। इसमें पीड़ित क्षेत्र में निरापद पीने के पानी की आपूर्ति और फ्लुओरोसिस की विस्तृत जानपदिक जानकारी का लक्ष्य रखा गया है।यह समस्या हमारे देश में १९३२ से बरक़रार है लेकिन अभी तक हमने इस दिशा में प्रगति नहीं के बराबर ही की है। पीने के पानी से होने वाले फ्लुओरोसिस की अधिकांश सूचना भारत से ही दुनियाँ को मिली है।

आपके अनुभव

हम समय-समय पर अपने पाठकों से अनुरोध करते रहे हैं कि हम प्राथमिक स्वास्थ्य संबंधी आपके अनुभवों का विशेष स्वागत करते हैं। यदि आपने जीवनीय में उल्लिखित या अन्यथा प्राप्त जानकारी के आधार पर कुछ लाभकारी या हानिकारक अनुभव किए हैं तो हमें आपसे अपेक्षा है कि आप अपने अनुभवों को हमें अवश्य लिखें ताकि उनसे अन्य पाठक भी लाभ उठा सकें।

संपादक मंडल

टूटी हड्डी जोड़ने के सरल उपाय

वैद्य र० म० नानल, बम्बई

औद्योगिक प्रगति के साथ बढ़ती हुई दुर्घटनाओं से आप, हम सभी परिचित हैं। शायद इतने परिचित हैं कि हमें इनसे कोई दुख नहीं होता और अगर होता भी है तो कुछ संमय के लिये। इन दुर्घटनाओं के अनेक प्रकार होते हैं। इसके प्रकार हैं– अस्थिभग्न–अस्थिभंग अर्थात् हड्डियों का टूटना। इस दुर्घटना के बाद उम्र भर की शिकायतें शुरु हो जाती हैं। सर्वप्रथम समस्या आती है अस्थिभंग को जोड़ने के लिये दवाइयाँ अत्यल्प हैं और साथ–साथ लम्बा समय घर में लेटकर गुजारना पड़ता है। ऐसे में अपनाने योग्य सुलभ, घरेलू उपाय जो सस्ते भी हैं एवं अन्य उपद्रव भी नहीं करते निम्न हैं।

गोधूमसत्व : ५ किलो अच्छा गेहूँ, २४ घण्टे तक मोटे कपड़े में बांधकर, भिगोकर रखें। उसके बाद उन्हें पीसकर दुगुने पानी में घोल दें। हर २ घण्टे बाद अच्छी प्रकार मसल दें। ४ घण्टे तक स्थिर रखकर निथार लें। शेष घन भाग को धूप में अथवा अग्नि द्वारा सुखा लें। यह सफेद रंग का चूर्ण कांच की शीशी में भरकर रखें। यह गेहूँ का सत धूम (गो सत्व) है। इसे ५ ग्राम (१ चाय का चम्मच भर) मात्रा में दूध के साथ रोज २ बार पीवें। यह उपाय दो मास तक करें। हड्डियाँ जल्दी जुड़ेंगी। यह प्रयोग ५ मास के छोटे बच्चों पर भी कर सकते हैं। मात्रा १/४ चम्मच से शुरु करना चाहिए। हर हफ्ते १/४ चम्मच बढ़ाकर १ चम्मच तक बढ़ाकर ८वें महीने से १ चम्मच की मात्रा प्रतिदिन दें। दाँत निकलने में तथा हड्डियाँ अच्छी तैयार होने के लिए यह प्रयोग श्रेष्ठ है। यदि इससे मल प्रवृत्ति में कोई कुप्रभाव हो तो मात्रा कम करें।

मरिचमधीमधु : कालीमिर्च को तवे पर जला दें। जलकर काली राख बनानी चाहिये (सफेद राख का कोई उपयोग यहाँ नहीं होगा)। यह "मरिचमधी" है। इसे जंगली शहद के साथ दोनों वक्त भोजन के साथ–साथ खावें। मात्रा १ ग्राम मधी तथा ५ ग्राम शहद प्रयोग ८ सप्ताह तक करें। बच्चों में होने वाले अस्थिभग्न के लिए यह प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है। यदि इस प्रयोग से शरीर में जलन हो तो चंदन या खस का शरबत पिलावें।

आभादियोग : आभादिगुग्गुल नाम से यह बाज़ार में मिलता है। आभा नाम बबूल का है। बबूल छाल को सुखाकर पीस लें। १ चम्मच यह चूर्ण + १/२ चम्मच त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पिप्पली) चूर्ण रोज सुबह के खाने के बाद गरम पानी से पीवें। यह प्रयोग कम से कम २ मास तक करें।

निर्यास योग : निर्यास नाम हैं गोंद का। बबूल, गुग्गुल, कमरकस इत्यादि प्रकार बाज़ार में मिलते हैं। इनमें से कमरकस लें इसमें खसखस, सूखा नारियल, दालचीनी, शकर या गुड़ मिलाकर लड्डू बनाकर खावें। लड्डू ३० से ५० ग्राम तक के बनाएं।

वसादियोग :– वसा नाम होता है शुद्ध मांस की चिकनाई का। मटनसूप, पायासूप, सूकर वसा इनका नियमित सेवन करने से लाभ होता है।

कुक्कुटांडत्वक् भस्मयोग : देशी मुर्गी के अण्डों को घी में पकाकर खावें। उनके छिल्के हैं *"कुक्कुटाण्डत्वक् "*, जिन्हें अक्सर फेंक दिया जाता है। इन्हें जलाकर सफेद राख बनाकर शीशी में रखें। जलते समय इनकी बदबू आएगी। इस बात को भूलना नहीं वरना पड़ोसियों से मुफ्त का झगड़ा होगा और बद्दुआ मुझे मिलेगी। काली मिर्च की राख १ ग्राम और यह भस्म २/२ ग्राम रोज सुबह एवं रात को खावें। यह प्रयोग भी २ महीनों तक जारी रखें।

पथ्य : मांस, मांसरस (सूप), दूध, घी, मूँग का पानी, गेहूँ, नारियल, बादाम, सूखे आलू बुखारा , सूखे खजूर, वजन एवं पोषण बढ़ाने वाले आहार का प्रयोग करना चाहिए। विश्राम करें।

अपथ्य : नमक, तीखे पदार्थ– मिर्च (हरी), मसाले, खट्टे पदार्थ एवं क्षारयुक्त पदार्थ– ब्रेड, बिस्किट एंटासिड, रूक्ष, सूखे अन्न का सेवन न करें। मद्यपान न करें। मैथुन–व्यायाम न करें।

पृष्ठ ३३ का शेष

- पानी पर्याप्त मात्रा में पियें, जिससे मूत्र और मल का विसर्जन सुचारु रूप से होता रहे। प्रातः शौच से पूर्व, दोपहर भोजन के एक घण्टे पूर्व तथा दो घण्टे बाद सायंकाल ५ बजे, रात्रि भोजन के दो घण्टे बाद पर्याप्त पानी पियें। कम पानी पीने से मल शुष्क हो जाता है जिससे अनेक प्रकार के रोग होते हैं। भोजन के समय मात्र १ गिलास पानी बीच–बीच में पीना चाहिये। भोजन के तुरन्त बाद अधिक पानी पीने से जठराग्नि मंद पड़ जाती है और भोजन का पाचन बिगड़ जाता है।
- गतिशील बनकर कार्य करें। एक ही स्थान पर बैठे न रहें।
- अपनी शक्ति के अनुसार व्यायाम करिये, नित्य टहलें। प्रातः व सायं ३०–३० मिनट का शवासन अवश्य करें। यदि आसन करने की शरीर में क्षमता हो तो पद्मासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, हलासन, धनुरासन, योगमुद्रा किसी योग्य जानकार से सीखकर धीरे–धीरे करें। संधियों के व्यायाम धीरे–धीरे करें। अपनी इच्छा भर सोयें।

शिथिलीकरण व्यायाम

डा० भालचन्द्र जी० साठ्ये, मिरज

जोड़ों को स्वस्थ रखने के लिये रोज कोई न कोई व्यायाम करने की आवश्यकता है। अगर जोड़ों का व्यायाम हर रोज २० से ३० मिनट तक करने का यत्न करेंगे तो कोई भी जोड़ों की बीमारी मनुष्य को नहीं सता पायेगी। नीचे बताये गये सभी व्यायाम बाल, युवक तथा बूढ़े स्वस्थ व्यक्ति के लिये बहुत लाभ दायक है। ये व्यायाम प्रमुखता से शिथिलीकरण व्यायाम नाम से प्रसिद्ध हैं। ये व्यायाम सुबह नित्य कर्म के बाद करने चाहिए।

एक जगह दौड़ना : शरीर ढीला करके लय बद्ध वेग से एक ही जगह दौड़ना शुरू करें। वेग स्थिर और लयबद्ध रहे।

गुल्फ संधि शिथिलीकरण : एक जगह पर सीधे खड़े रहो। श्वॉस लेते–लेते दोनों हाथ बाजू से ऊपर की ओर उठाओ उसी समय एक पैर ऊपर उठाओ। श्वॉस छोड़ते हुए हाथ नीचे लाओ और उसी समय पैर भी नीचे रखो।

जानु संधि शिथिलीकरण : एक जगह पर सीधे खड़े रहो। सांस अंदर ले लो। श्वास बाहर छोड़ते हुए घुटने मोड़कर कुर्सी पर बैठने जैसी स्थिति बनाओ। श्वास बाहर छोड़ते हुए सीधे हो जाओ।

कमर शिथिलीकरण : सांस अंदर लेते हुए हाथ ऊपर उठाओ और पीछे की ओर झुकने का यत्न करो। हाथ ऊपर रखकर खड़े रहो, साँस छोड़ते समय आगे की तरफ कमर झुकाओ। हाथों से जमीन छूने का प्रयास करो। सांस लेते हुए सीधे हो जाओ। दोनों पांवों में एक मीटर का अंतर रखो।

- साँस लेते हुए दोनों हाथ ऊपर उठाकर जमीन के समांतर रखो।
- साँस छोड़ते हुए धीरे से दायें हाथ से दायें पाँव को छूने के लिए दायीं तरफ झुको।
- साँस अंदर लेते हुए सीधे हो जाओ। यही क्रिया बायें हाथ और बायें पाँव के साथ करो।
- ऊपर बतायी गयी क्रिया में दायें हाथ से बायें पाँव को छुओ और बायें हाथ से दायें पाँव को छुओ।

उरस्थ स्नायु के व्यायाम : दोनों हाथ की उंगलियाँ एक दूसरे में मिलाकर सीधे खड़े रहिए। साँस लेते हुए दोनों हाथ एक के ऊपर एक दबाते हुए सीने के पास लगाइए, साँस छोड़ते हुए हाथ नीचे ले जाइये।

अंससंधि शिथिलीकरण : सीधे खड़े रहकर दोनों हाथ आगे की तरफ घुमाना, यही क्रिया बायें हाथ से करना। सीधे खड़े रहकर दोनों हाथ पीछे की तरफ घुमाना।

ग्रीवा शिथिलीकरण : खड़े रहकर गला आगे पीछे घुमाना। खड़े रहकर गला गोल सभी तरफ घुमाना।

ये शिथिलीकरण व्यायाम सभी संधियों को कार्य सक्षम बनाये रखते हैं। व्यायाम के बाद शवासन द्वारा मन शांत करने से अधिक लाभ मिल जाता है।

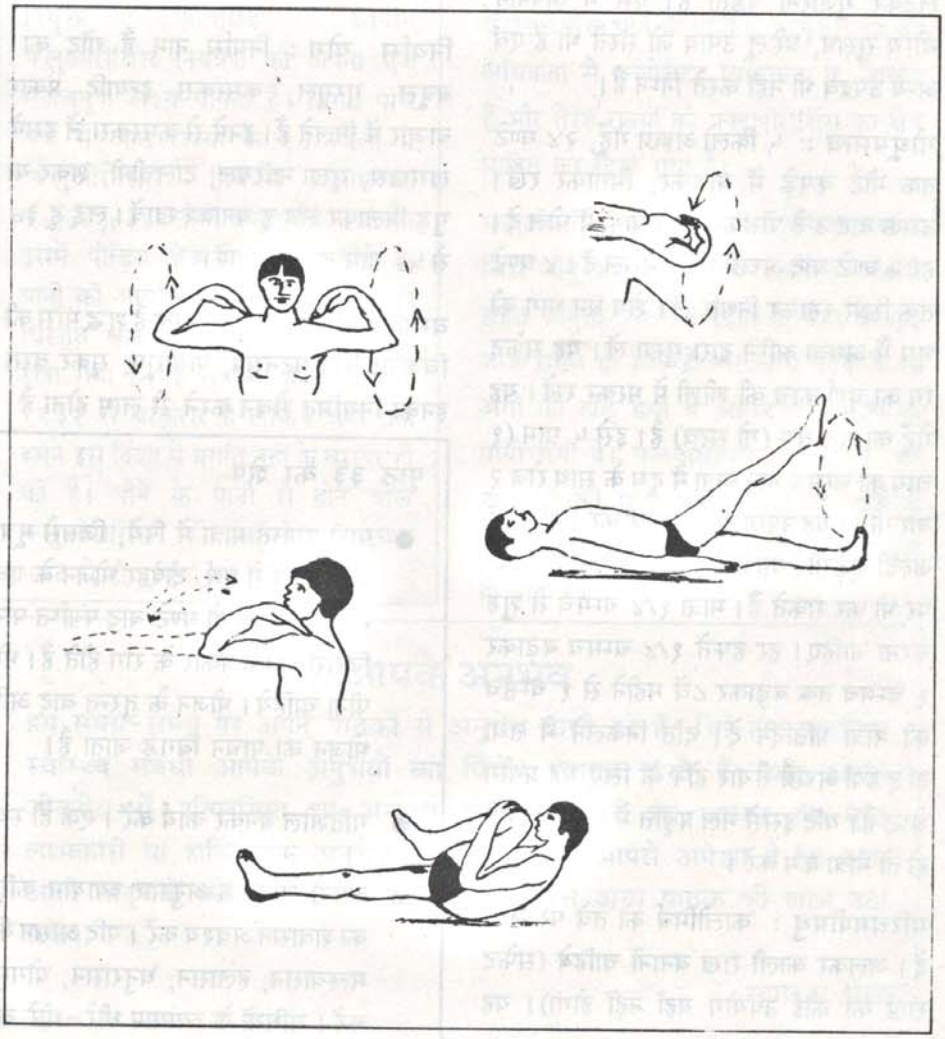

संधिशोथ या गठिया

प्रायः वयस्कों और वृद्धों को घुटने के दर्द से पीड़ित देखा जाता है, लेकिन २५ वर्ष से कम आयु वाले दस प्रतिशत लोगों में ही इसके लक्षण देखे जाते हैं। इस अस्थि संधिशोथ नामक रोग को सरल भाषा में गठिया भी कहा जाता है। गठिया, जोड़ों को प्रभावित करने वाली कई मिली-जुली बीमारियों का सामान्य नाम है। आर्थ्राइटिस और रुमेटाइड आर्थ्राइटिस आमतौर पर मिलने वाले इसके दो सामान्य रूप हैं। लेकिन कई बार यह दूसरी बीमारियों जैसे टी० बी०, सिफिलिस, गोनोरिया या विषाणुजन्य रोग मीज़ल्स और इन्फ्लूएंजा के कारण भी हो जाता है। इन सबको रुमेटिक रोगों के अन्तर्गत ही रखा गया है, रुमेटिक ज्वर भी इसी में शामिल है।

यह रोग रोगी को बिल्कुल अपंग बना देता है। यह जोड़ों के दर्द के रूप में जाना जाता है जो प्रायः मानव शरीर की बढ़ती उम्र के साथ होता है। वैसे ऐसा बहुत कम होता है कि एक या एक से अधिक जोड़ों में खराबी इस सीमा तक हो जाए जब बहुत दर्द हो या अपंगता आ जाए। लेकिन अमेरिका में तो १४ वर्ष से अधिक आयु के १५ करोड़ लोग आर्थ्राइटिस से पीड़ित हैं जिसमें से एक चौथाई तो कार्य करने की क्षमता खो चुके हैं।

माना जाता है कि संधिशोथ संभवतः जीवनपर्यन्त जोड़ों पर पड़ने वाले दबाव का नतीजा होता है। इस रोग में हाथ और पैर के जोड़ अंगुलियाँ, और कंधे तक प्रभावित हो जाते हैं।

आस्टिओ-आर्थ्राइटिस उन उपास्थियों के टूटने के कारण होता है जो हड्डियों के सिरों को ढक लेते हैं। कार्टिलेज उपास्थि के हटने के बाद हड्डियों की खुरदरी सतह रह जाती है और जोड़ों को हिलाने में दर्द होने लगता है। कभी-कभी इसे प्राथमिक ऑस्टियो आर्थ्राइटिस भी कहते हैं जब यह आनुवंशिक होता है। इसके लिए आराम व सिकाई लाभकारी होती है। सिकाई करना फिज़िओथिरेपी का ही एक भाग है। शार्टवेव डायथर्मी या इन्डक्टोथर्मी व्यायाम, हाथ पैरों की मोम से सिंकाई, गर्दन व पीठ स्पाइन के लिए थोड़ी-थोड़ी देर बाद ट्रैक्शन खिंचाव व हाइड्रोथिरेपी यह सभी उपचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। अगर इन सबसे रोगी को आराम नहीं पहुँचता तो जोड़ में स्टीरायडों को इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है।

आर्थ्राइटिस के सभी प्रकारों में रुमेटाइड आर्थ्राइटिस सबसे घातक है। बहुत बार यह बिना स्थायी प्रभाव डाले अपने आप गायब हो जाता है। कभी-कभी यह दीर्घकालिक हो जाता है और प्रभावित जोड़ों को बिल्कुल ही अपंग बना देता है। पुरुषों की तुलना में यह रोग स्त्रियों को अधिक होता है।

कभी-कभी मानसिक आघात भी इस रोग का कारण होता है। चोट लगना भी इस बीमारी का एक कारण हो सकता है। इसके प्रारम्भिक लक्षण हैं, थकान, भार में कमी, सामान्य कमजोरी और जोड़ एवं मांसपेशियों में कड़ापन। एक या अधिक जोड़ों पर सूजन आ जाती है और दर्द होने लगता है।

जोड़ों की श्लेषक झिल्ली पर रोग का आक्रमण होता है। इस झिल्ली से एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकलता रहता है जो जोड़ों को चिकना बनाए रखता है। इस बीमारी में यह पदार्थ काफी मात्रा में बनने लगता है। इससे जोड़ फूल जाते हैं, कार्टिलेज उखड़ जाती हैं और जोड़ों में दर्द होने लगता है। इसके उपचार के लिए शारीरिक व मानसिक आराम आवश्यक है। सर्दी, और नमी से दूर रहने की सलाह दी जाती है। दर्द निवारक दवाइयाँ दी जाती हैं। श्लेषक झिल्ली को हटाना, जोड़ों को मिलाना, जोड़ विस्थापन आदि कुछ शल्य क्रियाएं भी की जाती हैं।

दर्दनाशक तेल

पहला तेल बनाने के लिये एक लाल रंग की बोतल लेवें। इस बोतल में २०० ग्राम शुद्ध सरसों का तेल भर दें। इस तेल में १५ ग्राम कपूर डाल दें। अब इस बोतल को धूप में एक ऐसे पटिये पर रखें, जिस पर कोई कील न ठुकी हो। पटिये पर रखी बोतल पर सुबह से लेकर सूर्यास्त तक धूप पड़ती रहे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। सूर्यास्त होते ही पटिये को उठाकर घर के अन्दर रख लेवें। बोतल को हाथ न लगावें। दूसरे दिन सूर्योदय के समय पुनः उसे उठाकर धूप में रख दें। ऐसा चालीस दिन तक करें। इन चालीस दिनों में इस बात का पर्याप्त ध्यान रखें कि न तो उस बोतल को कोई छुये और न ही वह बोतल उस पटिये से नीचे उतारी जावे। इसी प्रकार चन्द्रमा की किरणें उस बोतल पर न पड़ने पावें। चालीस दिन के बाद बोतल को हाथ में लेकर भली प्रकार हिला लें। तेल उपयोग के लिये तैयार है। जोड़ों पर इस तेल की मालिश परम लाभदायक है। एक ही बार में अधिक तेल बना लेना चाहिये। ताकि बार-बार की झंझट से बचा जा सके।

दूसरे प्रकार का तेल भी जोड़ों के दर्द के उपचारार्थ बनाया जाता है। इसके लिये लगभग २५० मिलीलीटर तिल के तेल में १०० ग्राम निर्गुण्डी के पत्तों को सावधानीपर्वूक उबाला जाता है। कुछ ही समय में पत्तियों का सत तेल में उतर जायेगा। तेल को कपड़े से छान लें व पत्तियों को उस तेल में भली प्रकार निचोड़ लें। इस में १५ मिलीलीटर गिरनार का तेल, १५ मिलीलीटर तारपीन का तेल, १५ मिलीलीटर उपयोग किया हुआ घासलेट तथा १५ मिलीलीटर मिथाइल सेलिसेलेट मिला दें। इसके पश्चात् १५ ग्राम कपूर पीसकर इस मिश्रण में डालकर संपूर्ण मिश्रण को भली प्रकार हिला दें। अब, तेल उपयोग के लिये तैयार है। जोड़ों पर इस तेल की मालिश अत्यन्त लाभदायक रहती है।

पर्यावरण एवं स्वास्थ्यः प्राथमिकताएँ

नरेन्द्र सहगल, नई दिल्ली

दुनिया भर में पिछले कुछ वर्षों में शायद ही किसी अन्य विषय पर इतना बोला, लिखा, या देखा गया हो, जितना पर्यावरण एवं प्रदूषण पर। इन विषयों से सम्बन्धित समस्याएं विश्व के हर भाग में विकट से विकटतम होती जा रही हैं। भारत में भी स्थिति और समस्या गम्भीर हैं। यदि हम इस बात पर गौर करें कि हमारे जनसंचार माध्यमों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा पर्यावरण विशेषज्ञों ने किन किन मुद्दों पर अपना सर्वाधिक ध्यान केन्द्रित किया, तो निम्नलिखित बातों को पायेंगे : परमाणु अस्त्रों और भट्ठियों, बड़े बड़े बाँधों (जैसे, नर्मदा और टेहरी), रासायनिक एवं जैविक हथियारों तथा जैव प्रौद्योगिकी, रसायनों, उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाइयों, ओज़ोन छतरी में छेद, वनों के नाश, और पानी तथा हवा के प्रदूषण इत्यादि से सम्बन्धित खतरे और समस्याएं। इनमें से किन किन समस्याओं पर हमारे जनसंचार माध्यमों और पर्यावरणीय स्वयंसेवी संस्थाओं ने कितना ध्यान केन्द्रित किया, यह प्रायः इस बात पर निर्भर रहा है कि पश्चिमी देशों और अमेरिका के संचार माध्यमों का इन विषयों पर क्या रुख और रवैया है, और वहाँ पर बहुचर्चित विषय कौन से रहे हैं।

उपरोक्त से तात्पर्य यह नहीं कि ये समस्याएं और ये विषय भारत के संदर्भ में महत्वपूर्ण नहीं हैं। वे निःसन्देह हैं, लेकिन किस समस्या पर कितना समय और साधन लगाये जाएं, वह यहां की वस्तु-स्थिति को पूरी तरह जानकर और ध्यान में रखकर ही निश्चित किया जाना चाहिए। अन्य कई क्षेत्रों की तरह पर्यावरण-क्षेत्र में भी हमने अपना ध्यान उन्हीं विषयों पर केन्द्रित करने का सर्वाधिक प्रयास किया है, जो विदेशों में बहुचर्चित है- जैसे, ओज़ोन छतरी में छेद- न कि उस एक विषय पर जो, प्राथमिकताओं के आधार पर, कम से कम भारत के संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण है और वह है हमारे आसपास की गन्दगी, गन्दगी के ढेर, हमारे सफाई के मूल्य, और मापदण्ड, और इनके बारे में हम सबका निजी दृष्टिकोण, सहनशक्ति और बुरी आदतें, व्यवस्था और वस्तुस्थिति। हर शहर, हर गाँव में कुछ साफ क्षेत्रों को छोड़कर आमतौर पर हालत खराब है, गलियों सड़कों, चौराहों, घरों के बाहर, दुकानों, बाजारों के आस-पास, बसों, बस-स्टापों, रेलगाड़ियों, रेलवे प्लेटफार्मों, रेलवे लाइनों पर, कुओं, नलों, नल-कूपों के पास, सार्वजनिक शौचालयों, मूत्रालयों के आस पास, मनुष्यों और जानवरों का अजब सह अस्तित्व, हर जगह मलमूत्र और उसकी बदबू-हमारे पर्यावरण में सबसे विकट और सबसे पहले निपटाने योग्य, इससे बड़ी समस्या और क्या हो सकती है?

लेकिन आश्चर्य तो यह है कि पर्यावरण की समस्याओं सम्बन्धी लगभग सभी चर्चाओं, सभाओं और गोष्ठियों में इसी विषय के सिवाय बाकी सभी विषयों पर बड़े-बड़े भाषण, विचार-विमर्श, बहस इत्यादि होते हैं। इस ओर कोई ध्यान नहीं देता।

हर प्रकार के सार्वजनिक स्थानों में झुग्गी झोपड़ियों में और सड़कों पर पैदल या सवारी से चलने वालों के लिये, या गलियों, मुहल्लों में, साफ और पानी-सहित शौचालय की सुविधा या तो होती ही नहीं, या फिर ऐसी गन्दी स्थिति में होती है कि कोई उसे उपयोग में लाने का दुस्साहस नहीं कर सकता। पहले तो इनका प्रावधान ही नही रखा जाता, यदि नाँम मात्र के लिये ये सुविधाएं बना भी दी जाती हैं तो उनकी सफाई, रखरखाव, मरम्मत इत्यादि की न तो कोई ठोस व्यवस्था की जाती है और न ही किसी पर उनका उत्तरदायित्व होता है।

इन सब के अलावा एक समस्या और भी है, वह है पानी का उपयुक्त मात्रा एवं समय पर उपलब्ध न होना परिणाम सबके सामने है ही।

क्या ये सब समस्याएं पर्यावरण विशेषज्ञों के ध्यान और समय के काबिल नही हैं? क्या इन्हें हमारी प्राथमिकताओं में सबसे ऊपर स्थान नहीं मिलना चाहिए? क्या हमारे चारों ओर की इस गन्दगी, कूड़े-करकट और बदबू से हमारी वायु और हमारे पानी के प्रदूषण और उससे होने वाली अनेकों बीमारियां और स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभाव, ओज़ोन छतरी में हो रहे छेदों, हमारी ६-८ अणु भट्ठियों से पैदा होने वाले सम्भावित खतरों या नर्मदा बाँध के बनने से विस्थापित हुए लोगों के पुनर्वास की समस्याओं, वनों और पेड़ों के कटने से पैदा होने वाले दुष्प्रभावों से कम हैं?

क्यों न हम अपनी प्राथमिकताओं में सुधार लाकर देश की इस सर्वाधिक गम्भीर समस्या को समझने, इससे निपटने की कोशिश करें और इसके निदान हेतु तुरन्त उचित और पर्याप्त कदम उठाएं? इस क्षेत्र में किये जाने वाले अपने प्रयासों तथा परियोजनाओं में निवेश होने वाले कुल समय एवं संसाधनों का कम से कम पचास प्रतिशत भाग हमें तब तक इस ओर लगाते रहना होगा जब तक इस समस्या पर काबू नहीं पा लिया जाता। फिर इसी से जुड़ी समस्याएं हैं पानी और वायु के प्रदूषण की, जो हर दिन अधिक भयंकर रूप धारण करती जा रही हैं। इन पर काबू पाने के लिये भी हमें समानान्तर प्रयास करते रहना पड़ेगा।

पर्यावरण सुधार
व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

इस समस्या को सुलझाने का उत्तरदायित्व जब तक हम सभी नागरिक, व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से स्वयं अपने ऊपर नहीं ले लेते, मात्र पंचायतों, नगरपालिकाओं, सरकार द्वारा किये गये विभिन्न उपाय कभी सफल नहीं हो पायेंगें। यह समस्या प्रत्येक व्यक्ति की समस्या है। अतः बिना अपवाद के प्रत्येक व्यक्ति को प्रदूषण दूर करने में सदा प्रयास करते रहना होगा अन्यथा सरकार के सारे प्रयासों के बावजूद समस्या ज्यों की त्यों रहेगी।

(स्रोत फीचर्स से साभार)

दादी माँ के नुस्खे

वैद्य बदलूराम रसिक, लखनऊ

सरस्वती– दादी मां चरण स्पर्श।

दादी मां– सुखी रहो बेटी, आज बहुत दिन के बाद आई हो।

सरस्वती– हां दादी मां इधर हम बड़ी परेशानी में पड़ गई थी हमारे चाचा का पैर फिसल जाने से उनके पैर का पंजा फूल गया था चल फिर नहीं पाते थे रात दिन दर्द होता था बहुत सी दवाई पंजे में लेप की गयी, बांधी गयी मगर पंजे का दर्द नहीं गया। डाक्टर को दिखाया तो उन्होंने कहा ३ महीने प्लास्टर चढ़ा रहेगा तब ठीक होंगे एक्सरे भी किया गया ह्ड्डी कहीं भी नहीं टूटी है तथा हटी भी नहीं है हमने डाक्टर से कहा कि हम २–३ दिन बाद आकर प्लास्टर चढ़वायेंगे। इसीलिए आपके पास आई हूँ कि आप हमें कोई अपनी दवा बतायें।

दादी मां– बेटी तुमने बहुत देर कर दी है खैर निकालो कापी और लिखो। आमा हल्दी ५० ग्राम, चोट सज्जी ५० ग्राम, चैन सुर ५० ग्राम, मैदालकड़ी ५० ग्राम, लोबान ५० ग्राम, कायफल ५० ग्राम, तिल काले ५० ग्राम, मेथी ५० ग्राम सबको महीन कूटपीस लें इसमें हड़जोड़ हरी ५०० ग्राम पानी में पीसकर मिला दें। फिर इसमें पान में खाने वाला गीला चूना ५० ग्राम मिला लें। इसी में २०० ग्राम सरसों का तेल मिला दें। बस दवा तैयार है। इस दवा को आग पर गरम करें और पैर में पहले महुआ का तेल चुपड़ दें। इस लेप को एक कपड़े पर फैलाकर पूरे पंजे पर कपड़े को लपेट कर बांध दें। इसे सायं काल बांधें और सवेरे इसे खोल फेंक दें और २ लीटर पानी में १ चम्मच नमक डालकर पानी को उबाल कर इसी सहते हुए गुनगुने पानी में पंजे को रख दें। १५ मिनट तक गरम पानी में पंजा रखने के बाद निकाल लें। एक घंटे पंजे को खुला रहने दें। एक घंटे बाद लेप को गुनगुना कर लें पहले पंजे पर महुए का तेल लगा दें। बाद में लेप चढ़ा कर यही बांध दें। इस प्रकार एक सप्ताह बराबर लेप बांधने और नमक के पानी से सेंक करने से सूजन तथा दर्द दोनों ही दूर हो जायेंगे। अगर हड् डी चिटक गई हो तो उपरोक्त लेप में फिटकरी ५० ग्राम मिलाकर तब लेप लगाना चाहिए।

रोगी को हड़जोड़ के छोटे टुकड़े काटकर बेसन में लपेट कर सरसों के तेल में पकौड़ी की भाँति बनाकर कम से कम १० पकौड़ी रोज खिलाना चाहिए। इसका नाम हड् डी लेप है।

सरस्वती– हमने सब लिख लिया है मगर दादी मां जैसे मारपीट में गिर जाने या कोई भारी चीज हड् डी पर गिर जाने पर हाथ–पैर, कमर, पीठ तथा सर पर गिरने या मारने या अन्य किसी प्रकार से चोट लगकर सूजन आ जाने और दर्द रहने पर कोई ऐसी उत्तम दवा बतायें जो हर प्रकार की चोट सूजन को दूर करने में उत्तम हो।

दादी माँ– लिखो बेटी, देखो अगर कोई कोठे पर से, सीढ़ी पर से, पेड़ से या अन्य किसी ऊंचे स्थान से गिर पड़े या गिरा दिया जाय तो उसका पुराना इलाज का तरीका यह है कि चोट खाये व्यक्ति को, फिटकरी ५ ग्राम पीस कर फंकाना चाहिए ऊपर से १ गिलास गुनगुना दूध पिला देने से बड़ा लाभ होता है इससे दर्द कम हो जाता है और सूजन भी नहीं होने पाती है। यह रोग हजारों बार का अनुभव किया है इसके बाद चोट लगे स्थान पर महुए की शराब या मैथिलेटड स्प्रिट मलना चाहिये। अगर चोट स्थान पर सूजन आ गई हो तो आमा हल्दी २५ ग्राम पीस लें, हड़जोड़ हरी ५० ग्राम को पानी से पीस लें और इसमें २५ ग्राम चूना गीला पान में खाने वाला मिला दें इसमें २५ मि० ली० सरसों का तेल मिलाकर पिसी आमा हल्दी भी मिला लें इसे आग पर गरम करके चोट वाले स्थान पर बांध दें। इसे ३ से ७ दिन बराबर बाँधने से हड् डी की चोट सूजन दर्द आदि दूर हो जाता है यह भी हजारों बार का अनुभूत योग है।

दादी मां– लिख लिया बेटी, अब लाठी डंडा आदि से चोट लगने पर भी उपरोक्त फिटकरी व दूध जरूर देना चाहिए साथ ही आमा हल्दी व हड़जोड़ का लेप जरूर लगाना चाहिए। इससे सूजन आदि ठीक हो जायेगी, मगर हड् डी का दर्द नहीं जाता है। इसके लिए सुअर की चर्बी को गुनगुना करके पीड़ा स्थान पर मालिश करना चाहिए इससे कुछ दिन में पीड़ा भी दूर हो जाती है।

पुरानी चोट के दर्द को दूर करने के लिए २ औषधियां मेरी अनुभूत हैं इन्हें भी नोट कर लोः–

महुए का पुआ– सूखे महुए २५ ग्राम लेकर रात को पानी में भिगो दें, सवेरे सिलपर पीस कर आटा गेहूँ २०० ग्राम तथा गुड़ ५० ग्राम सबको पानी मिलाकर गूंथ लें। सरसों का तेल या देशी घी कढ़ाई में में डालकर आग पर चढ़ा दें उसी में ढाई से तीन इंच के गोल पुए चकले पर बेलन से बेलकर पका लें। पुए ५ की संख्या में प्रातः–सायं खाने से पुरानी चोट का दर्द, हड् डी का दर्द दूर हो जाता है। इसके सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

लाक्षा गुग्गुल– लाक्षा गुग्गुल की ४–४ गोलियां कुचल कर गरम पानी या दूध से सबेरे शाम लेना चाहिए यह योग एक मास बराबर सेवन करना चाहिए।

शेष पृष्ठ ४३ पर

अनार के औषधीय गुण

अनार एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल है जिसका उपयोग प्राचीनकाल से होता आया है। यह फल विटामिनों और खनिजों से अत्यंत भरपूर है। इसमें कैलशियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस, लोहा, सोडियम, पोटेशियम, विटामिन सी आदि प्रचुर मात्रा में मिलता है। यह त्रिदोष नाशक, दीपक, हृदय के लिए गुणकारी, संग्रहणी, अतिसार, वमन, तृषा नाश, पौष्टिक, बलवीर्यवर्धक, शक्ति वर्धक हृदय रोगों जैसे उच्च रक्तचाप में लाभकारी है। इसके योग वायु गोला, अग्निमान्द्य आदि रोगों में अत्यंन्त लाभप्रद हैं, जैसे लवण भास्कर चूर्ण दाड़िमाष्टक चूर्ण, दाड़िमावलेह। प्रमेह रोगों में दाड़िमाद्य घृत प्रयोग होता है।

अनार समस्त चर्म रोगों, गुर्दे की खराबी, मूत्र में जलन, पथरी, व यकृत की कमजोरी में भी अत्यंत लाभप्रद है। यह थकान तो तत्काल कम कर देता है, बीमारी के बाद की कमजोरी व रक्ताल्पता आदि में भी यह अत्यंन्त प्रभावी है। कोशिश तो यह होनी चाहिए कि जब तक अनार मिले थोड़ा बहुत लेते रहना चाहिए। जिन बच्चों का विकास धीमा हो व कमजोर रहते हों, उन्हें तो अवश्य ही अनार का सेवन कराना चाहिए। इसको बीज सहित दांतों से कुचलकर खाना सबसे उत्तम रहता है। जो कुचल कर नहीं खा सकें उन्हें इसका जूस लेना चाहिए। अनार के फल के छिलके, जड़ पत्तियां सभी औषधि के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

भाषावार नाम–हिन्दी– अनार; गुजराती; राजस्थानी– दाड़म; बंगला– दालिम्ब; संस्कृत; मराठी– लैटिन–प्यूनिका ग्रैनेटम दाड़िम; तमिल; मदुलाई।

औषधीय गुण व उपयोग

अनार के कई अनुभूत औषधीय प्रयोग यहां दिए जा रहे हैं।

- १०० ग्राम अनारदाने में दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता सभी ५०–५० ग्राम, मिश्री १०० ग्राम मिलाकर चूर्ण कर लें और ५ ग्राम की मात्रा में यह चूर्ण दिन में तीन बार सादे जल से लेने से, सीने में जलन, अरुचि, मन्दाग्नि, अपच, पेट फूलना आदि तकलीफें नष्ट होती है।
- अनारदाने, सौंफ, धनिया तीनों बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण कर लें, २ ग्राम चूर्ण में एक ग्राम मिश्री मिलाकर दिन में चार बार देने से खूनी दस्त, खूनी आंव में आराम मिलता है।
- ५० ग्राम अनारदाने में १०० ग्राम गुड़ मिलाकर चूर्ण कर लें एक–एक चम्मच दिन में तीन बार लेने से, बवासीर, अजीर्ण अतिसार नष्ट होता है।
- अनार की छाल १०० ग्राम व जीरा ५० ग्राम का चूर्ण बना लें। एक–एक चम्मच दिन में तीन बार लेने से पतले दस्त बंद हो जाते हैं।
- अनार की पत्ती ५ ग्राम, काला जीरा ३ ग्राम पीसकर दिन में तीन बार देने से संग्रहणी, आँव आदि रोग नष्ट होते हैं।
- अनार के फल के छिलकों का चूर्ण १ चम्मच की मात्रा में दिन में तीन बार देने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।
- बार–बार पेशाब होने, प्रमेह रोगों में अनार की कली, कत्था, मिश्री बराबर मिलाकर एक–एक दिन में दो बार लेने से आराम हो जाता है।
- महिलाओं के श्वेत प्रदर (लिकोरिया) में १० से १५ पत्तियों को ५ दाना काली मिर्च के साथ पीसकर दिन में दो बार पीने से आराम होता है।
- अधिक प्यास लगने, जी मिचलाने आदि में अनार के रस में आधा नींबू निचोड़ कर पिएं।
- सूखे अनारदाने पानी में भिगों दें तीन चार घंटे बाद इस जल को थोड़ा–थोड़ा मिश्री मिलाकर कई बार पिलाने से उल्टी, जलन, प्यास आदि रोग नष्ट होते हैं।
- अनार के फूल २० ग्राम, जावित्री ५ ग्राम, दालचीनी १० ग्राम, धनिया १० ग्राम, काली मिर्च ५ ग्राम सब पीसकर चौथाई से आधा चम्मच शहद के साथ देने से बच्चों का अतिसार नष्ट होता है।
- अनार के फूल और दूब बराबर मात्रा में पीस कर मिश्री के साथ दिन में दो–तीन बार २–२ चम्मच की मात्रा से देने से नाक से गिरता खून बंद हो जाता है।
- पेट के कीड़े मारने में अनार बहुत लाभप्रद है इसके जड़ की छाल ५० ग्राम को २५० ग्राम पानी में उबालें ५० ग्राम पानी बचे तो उसे बासी मुंह लगातार तीन दिन पिलाने से तथा चौथे दिन कोई रेचक देने से कीड़े निकल जाते हैं।
- अनार के फूल १० ग्राम, कत्था १० ग्राम, कपूर एक ग्राम को पान के रस में घोट कर बड़े चने बराबर गोली बना लें एक–एक गोली दिन में चार बार चूसने से खांसी श्वास रोग नष्ट होते हैं।
- जुकाम में अनार के पत्तों को गुड़ में पीसकर जंगली बेर जैसी गोली बना लें एक–एक गोली दिन में तीन बार चूसने से आराम हो जाता है।
- अनारदाना १०० ग्राम; दालचीनी इलायची, तेजपात २०–२० ग्राम; सोंठ, मिर्च, पीपल सभी ४०–४० ग्राम लेकर २५० ग्राम पुराना गुड़ मिलाकर महीन

शेष पृष्ठ ४८ पर

मेंहदी

डा. सतीश आत्रेय, इलाहाबाद

प्राचीन काल से ही मेंहदी भारत में मांगलिक कार्यों में शुभ मानी जाती रही है। युवतियों के श्रृंगार प्रसाधन की यह मुख्य वस्तु उनकी हथेलियों तथा नखों की सुन्दरता बढ़ाती आ रही है। आज भी महिलायें इसे तीज, नरक चतुर्थी, कजरी, रक्षा बन्धन, विवाह आदि के अवसर पर अपने हाथों में कलात्मक ढंग से सजाती हैं। कुछ प्रान्तों में तो मेंहदी वर पक्ष की ओर से कन्या को चढ़ावे के व गहनों के साथ प्रदान की जाती है। मेंहदी के पुष्प मादक एवं भीनी सुगन्ध बिखेरते हैं। इसके पौधे में वायुमण्डल को शुद्ध करने की आश्चर्यजनक शक्ति पाई जाती है। इसकी पत्तियों का सूखा चूर्ण भी रखा जाता है परन्तु यह अलंकार की वस्तु के साथ-साथ प्रकृति प्रदत्त औषध महत्वपूर्ण भी है।

इसे संस्कृत में रंजका, रक्त रंगा, पंजाबी तथा हिन्दी में मेंहदी, हिना बंगला में मेदी, गुजराती में शुदी, अरबी में हिना तथा उर्दू में मेंहदी कहते हैं। आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार मेंहदी के पत्ते वमन कारक, कफ निस्सारक, दाह तथा श्वेत कुष्ठ में लाभकारी हैं। इसके फूल उत्तेजक, हृदय तथा मज्जा तन्तुओं को बल प्रदान करने वाले हैं तथा बीज ज्वर नाशक, मल रोधक तथा उन्माद जैसे भयंकर रोगों पर बहुत लाभकारी है। महिलाओं को बहुधा आधासीसी (अर्ध कपारी) का दर्द कष्ट देता रहता है। उस समय मेंहदी के पत्तों को महीन पीसकर मस्तक पर लेप करें। दर्द अवश्य कम हो जायेगा।

श्वेत कुष्ठ में, मेंहदी की २५ ग्राम पत्तियों को २५० ग्राम पानी में शाम को भिगो दें। प्रातः काल मलकर छान लें तथा पिलावें। चालीस दिन तक नित्य यही प्रयोग करने तथा नमक, मिर्च व गरिष्ट आहार का परहेज करने से अवश्य लाभ होगा।

कामला में जिसमें आंख, हाथ, पैर पीले हो जाते हैं, पेट बड़ा और शरीर का रंग बरसाती मेढक जैसा हो जाता है। मेंहदी की ३० ग्राम ताजा पत्तियों को कूट कर २५० ग्राम जल में शाम को भिगो दें। प्रातः काल जल को निथार लें तथा उस जल को रोगी को पिला दें एक सप्ताह में ही कामला रोग दूर हो जायेगा।

गठिया रोग बहुत ही कष्ट कारक होता है। यदि गठिया की तकलीफ ज्यादा हो तो मेंहदी की ताजा पत्तियाँ महीन पीस लें तथा रात में सोते समय दर्द की जगह गाढ़ा लेप करें। जितने दिनों तक दर्द बना रहे यह प्रयोग दुहराते रहें। गठिया में अवश्य लाभ होगा।

पथरी में मेंहदी की छाल का हिम बनाकर पिलायें।

शरीर में यदि कहीं गांठ या फोड़ा हो तो पत्तों को बारीक पीसकर उसकी पुल्टिस बांधे, गाँठें बैठ जायेंगी।

अधिकांश मामलों में चेचक निकलने पर लोगों की आँखों पर असर आ जाता है। अतः चेचक निकलते ही मेंहदी के पत्तों को पीस कर उसे तलवे में लेप करें। चेचक कितना ही भयंकर क्यों न हो आँखों पर असर नहीं आयेगा।

मसूढ़ों, दाँतों में दर्द हो या मुंह में छाले पड़ गये हों तो मेंहदी की पत्तियों का काढ़ा बनाकर ठण्डा करें तथा उससे कुल्ला करें।

जिन्हें रात में नींद न आती हो या बार-बार नींद उचट जाती हो वे रात में सोने से पहले मेंहदी के फूल सिरहाने रख लें, अच्छी और गहरी नींद आयेगी।

पृष्ठ ४१ का शेष . . .

हर प्रकार की नई पुरानी मोच, दर्द, सूजन को दूर करने के लिए अद्भुत तैल

महुए का तेल २०० एमएल०, रेंड़ी का तेल २०० एम एल०, तिल का तेल २०० एमएल० सरसों का तेल २०० एम एल०, तारपीन का तेल २०० एमएल० इन पांचों तेलों को एक में मिला लें। हड़जोड़ ताजी एक किलो, आमाहल्दी १०० ग्राम, मेथी १०० ग्राम तीनों को पीसकर ४ लीटर पानी में पकायें जब १ लीटर शेष रहे छानकर रखें। उपरोक्त मिश्रित तेलों को आग पर चढ़ा दें, इसमें उपरोक्त हड़जोड़ वाला काढ़ा डालकर धीमी आग में पकायें। पक जाने पर उतार कर ठंडा होने पर छान लें। इसमें ५० ग्राम कपूर कुचल कर डाल दें। कपूर तेल में मिल जायेगा। इस तेल की मालिश दोनों समय करने तथा चोट स्थान को सेकने से हर प्रकार का दर्द दूर हो जाता है। यह रोग भी हजारों बार का अनुभव किया हुआ है।

बहुत बार देखा है देहातों या शहरों में लाठी या बेंत से मारपीट करने से चोट स्थान पर फूल जाता है निशान पड़ जाते हैं ऐसी चोट वाले रोगी की हड्डियों में बड़ा दर्द होता है मांस भी सूज जाता है। ऐसी दशा में रोगी को आमा हल्दी २० ग्राम पिसी और सूजी १०० ग्राम का देशी घी में हलुआ बनाकर दोनों समय खिलाना चाहिए।

महुए की शराब १०० एमएल० तथा सुअर की चर्बी १०० एम एल० दोनों को एक में मिलाकर चोट वाले स्थान पर मलने से हड्डी की चोट का दर्द दूर हो जाता है यह भी अनुभूत योग है।

इसके अलावा हड्डी टूट जाने, चिटक जाने या उखड़ जाने पर अनुभवी डाक्टर की सहायता लेनी चाहिए।

खट्टे नींबू के औषधीय गुण

डा० श्रीमती सुनन्दा रानाडे, पूना

पूरे विश्व के शीतोष्ण क्षेत्रों में उगाये जाने वाला यह पेड़ संस्कृत में निम्बूक या अम्लसार के नाम से जाना जाता है। साधारण जनता इसे नींबू के नाम से जानती है, अंग्रेजी में इसे साधारणतः लाइम कहते हैं जो नींबू से आकृति में भिन्न होता है। लाइम (सिट्रस सीडा) गोल और आकार में छोटा, पतले छिलके वाला तथा कम रस वाला होता है जबकि नींबू (सिट्रस लेमन) अंडाकार, अधिक रस वाला तथा मोटे छिलके वाला होता है। दोनों प्रकार के नींबू का रासायनिक संगठन लगभग समान होता है पर लाइम का मुख्यतः औषधीय उपयोग होता है जबकि नींबू अचार, स्क्वैश, जैम, मारमलेड आदि बनाने के काम आता है।

भाषावार नाम : हिन्दी–नींबू, निम्बू, बंगला–पटी नीबू, मराठी–लिम्बू, गुजराती–लीम्बू, तेलुगु–निम्मा, तमिल–इलीमिची, मलयालम–चेरुनरंग, संस्कृत–निम्बू, निम्बूक, अंग्रेजी–लाइम, लेमन, लैटिन–साइट्रस लेमोनेम, साइट्रस लिमिटियोडिस।

नींबू का सम्बंध अच्छे स्वाद और ताजगी से है। कच्चा फल हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता है। जब यह पक कर पीला हो जाता है तो भी इसका खट्टा स्वाद बना रहता है। यह पीला नींबू औषधीय उपयोग के लिये सर्वोत्तम है। नींबू के छिलके से प्राप्त रस और तेल (हिस्पिरीडिन) का औषधीय उपयोग किया जाता है। नींबू विटामिन सी का प्राकृतिक स्रोत है और खांसी जुकाम में उत्तम औषधि के रूप में इसके प्रयोग की सलाह दी जाती है। फल का खट्टा रस सर्वोत्तम क्षुधावर्धक है, यह अग्नि को बढ़ाकर पाचन में सहायक होता है तथा गैस को दूर करता है। प्राचीन ग्रन्थों में खट्टे नींबू का उल्लेख बहुत सी बीमारियों को ठीक करने के लिये किया गया है।

नीचे कुछ नुस्खों का वर्णन किया गया है जिनकी उपचारात्मक क्षमता उच्च कोटि की है व ये गृहिणियों द्वारा बनाये जा सकते हैं।

क्षुधावर्धक : भूख न लगने या अपच होने पर नींबू और अदरक का रस बराबर मात्रा में लें इसमें एक चुटकी नमक डालकर दो चम्मच दिन में तीन चार बार लें। पाँच छः दिन में भूख लगने लगती है।

अपच : उपरोक्त मिश्रण को लेकर उसमें थोड़ी सी भुनी हींग और गुड़ मिला लें। इसका दो चम्मच गुनगुने पानी के साथ दिन में चार बार लेने से दर्द और अपच ठीक हो जाता है।

पेट फूलना या गैस : दो चम्मच नींबू का रस सूखे अदरक के चूर्ण, काली मिर्च, लौंग, हींग और सेंधा नमक के साथ लेने पर गैस को तुरन्त कम करता है।

स्वाद का समाप्त होना : नींबू के टुकड़े को सेंधा– लाहौरी नमक के साथ गरम करके चबाने से स्वाद बढ़ जाता है।

वमन : नींबू का रस छः चम्मच चीनी के साथ एक गिलास ठंडे पानी में मिलाकर उत्तम शीतल पेय बन जाता है, इससे प्यास बुझती है और वमन तथा गर्भावस्था में मिचली की अनुभूति दूर होती है।

वमन, अपच या पित्त बढ़ना : १२५ मि० ग्रा० शंख भस्म नींबू के रस में मिलाकर दिन में तीन चार बार लेना चाहिये।

आधे नींबू को आग में जलाकर धूप में सुखा लें फिर पीस कर चूर्ण बनाकर बोतल में रख लें। इस चूर्ण का एक चम्मच मिचली दूर करने तथा वमन के बाद लाभदायक है। इस चूर्ण का व्यवहार अम्लपित्त या अधिक अम्लता में नहीं करना चाहिये।

दस्त और कालरा : नींबू का स्क्वैश पानी के साथ घूंट–घूंट लेने पर उत्तम पुनर्जलीकरण का कार्य करता है। इसे ८ से १० आउंस की मात्रा में प्रतिदिन लेने पर दस्त में लाभ पहुंचता है।

मृदु विरेचक : नींबू का रस मल को साफ करके उसे निकालने में सहायक है। सोते समय गुनगुने पानी के साथ नींबू का रस लेने तथा तांबे के बर्तन में रखा पानी प्रातः लेने से कब्ज दूर होता है। यह गर्भवती स्त्रियों के लिये भी निरापद है।

सर्दी और ज्वर : गर्म पानी के साथ नींबू का रस सर्दी और हल्के बुखार के लिये लाभदायक है। टायफायड में ताजे नींबू का रस नारियल के पानी में मिलाकर दिया जा सकता है। एक लीटर पानी में नींबू के कुछ टुकड़े लेकर उसे उबालें जब यह १/४ लीटर रह जाय तो इसे रात भर रख दें। अगले दिन खाली पेट यह पानी लें। यही क्रिया एक सप्ताह तक दोहरायें। इससे मलेरिया ठीक हो जाता है।

बाई (आर्थ्राइटिस) : सूजे हुये जोड़ों पर नींबू का रस और रेंडी का तेल बराबर मात्रा में मिलाकर लगाने से सूजन कम होती है। एक कप गर्म पानी में शहद और नींबू की समान मात्रा दिन में दो बार पीने से और लाभ होता है।

सूखी खांसी : सूखी खांसी में भुने नींबू के रस में समान मात्रा में चीनी अथवा शहद मिलाकर एकसार कर लें। इसे १ चम्मच दिन में चार बार लें। टांसिल की तीव्र शोथ में एक गिलास गर्म पानी में शहद और ताजे नींबू का रस मिलाकर घूंट–घूंट लेने से बहुत लाभ होता है।

नेत्रश्लेष्मा शोथ : नींबू से आंख की सूजन की बहुत अच्छी दवा बनाई जा सकती है। एक कप ताजे नींबू का छिलका लें, उसमें ४ कप पानी मिलाकर तब तक उबालें जब तक वह आधा न हो जाय। इसे कुछ समय के लिये रख दें फिर छान लें। सवेरे और रात में इसकी दो तीन बूंदे आंख में डालें।

दांत और मसूढ़े : नींबू के रस में थोड़ा नमक और खाने वाला सोडा मिलाकर दांतों और

बहूपयोगी बाँस

पूरे भारत में बांस एक जंगली वृक्ष की तरह ही उगता है। पूर्व और पश्चिम भारत के पहाड़ी इलाकों में यह जगह-जगह मिल जाएगा परन्तु गंगा और हिमालय की निचली घाटियों में इसे अन्य पेड़-पौधों की भांति बीज बोकर उगाया जाता है।करीब बारह मीटर लंबे एवं १०-१५ से०मी० गोलाई वाले बांस का जन्म स्थान एशिया ही माना जाता है। दुनिया भर में पाई जाने वाली करीब ७१२ किस्मों में १५० से अधिक किस्में भारत में ही पाई जाती हैं। हर साल जुलाई से लेकर अक्टूबर माह तक इस पेड़ की नई कोमल शाखायें निकलकर नये-नये हरे और चमकदार बांस को जन्म देती हैं। बांस का तना गोल, चिकना और भीतर से खोखला होता है। इसकी गांठें सूजी हुई होती हैं। बांस की पत्ती बेहद चमकदार, पतली मगर कड़ी और चिकनी होती है। बांस के फूल गुच्छों में होते हैं और बीज शक्ल-सूरत में गेंहूँ के दानों जैसे होते हैं।

भाषावार नाम : हिन्दी व उर्दू- बाँस; संस्कृत- वेणु ; अंग्रेजी - बैम्बू ; लैटिन- बैम्बूसा बांबोस।

रासायनिक विश्लेषण करने पर बांस में कार्बोहाइड्रेट या शर्करा की मात्रा सर्वाधिक पाई गई है। इसके बाद क्रमानुसार घटते अनुपात में प्रोटीन, खनिज तत्व एवं वसा मिले हैं। कैल्शियम, लोहा व कई तरह के विटामिन बी तथा विटामिन सी के अलावा इसमें प्रोटीन को पचाने वाले तन्तुओं की प्रमुखता रहती है।

उपयोग : बांस की पत्तियों, कोपलों और नर्म प्ररोहों में कई रोगहर गुण पाये जाते हैं। बांस की पत्तियां खून को रोकने के लिए पीसकर लगाई जाती है। पत्तियों को आमाशय की सभी गड़बड़ियों को दूर करने के लिए रामबाण औषधि माना जाता हे। पत्तियों का रस न सिर्फ बीमारी और दस्त से कमजोर पड़ गये आमाशय को मजबूती प्रदान करता है वरन् उसकी पाचन शक्ति को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध हुआ है।

बांस की कोमल कोपलें भी पेट के विकारों को दूर करने के लिए उपयोगी है। मिजोरम में इन कोपलों का अचार भी डाला जाता है। जिसे एक अच्छा बुभुक्षाकर या भूख बढ़ाने वाला माना गया है।

डायरिया या दस्त में बांस की पत्तियों का काढ़ा पिलाया जाता है। सांस की बीमारी में बांस की कोपलों का काढ़ा एक चम्मच शहद के साथ पीने पर आराम मिलता है। पेट में कीड़े पड़ जाने पर भी पत्तियों का काढ़ा पिलाया जाता है। पुराने घावों को साफ करने के लिए आग में पकायी नर्म कोपलें एक झीने कपड़े पर रख दी जाती हैं और इस कपड़े को सावधानी से घाव पर रखने से घाव जल्दी भर जाता है इसी प्रकार बांस की पत्तियों के रस या काढ़े को फोड़े या फुंसियों पर लगाने से काफी आराम मिलता है। पेट के अन्दर अल्सर या फोड़ा हो जाने पर ५० ग्राम ताजी और नर्म पत्तियों का रस किसी फल के रस के साथ दिन में दो बार लेना चाहिए या फिर ६०-८० ग्राम पत्तियों का काढ़ा प्रतिदिन पीना चाहिए। कोपलों के रस (करीब एक छोटा कप) दिन में दो बार पीने से एक हफ्त में ही लाभ हो जाता है।

कोपलों और ताड़ के गुड़ का काढ़ा दिन में दो बार एक हफ्ते तक देने से अनचाहा गर्भ गिर जाता है।

बांस को जलाकर बनाई गई राख से दांत चमकदार व साफ हो जाते हैं। बांस की राख और कोयला पीसकर घावों पर लगाने से घाव को जल्दी भरने में सहायता मिलती है।

मसूढ़ों पर रगड़ें। इससे दांत साफ होते हैं और स्कर्वी तथा पायरिया के कारण मसूढ़ों से निकलने वाला खून भी बन्द हो जाता है।

मोटापा : एक गिलास गरम पानी में चार चम्मच नींबू का रस और दो चम्मच शहद मिलाकर रोज प्रातः लेने से मोटापा कम होता है। इस उपचार के दौरान हल्का भोजन व व्यायाम की सलाह दी जाती है।

सौंदर्य प्रसाधन

- खट्टे नींबू का बहुत से सौंदर्य प्रसाधनों में उपयोग होता है। एक गिलास मट्ठे को नींबू के रस के साथ लेने पर उत्तम सौन्दर्यवर्धक का कार्य करता है।
- आधा चम्मच हल्दी पाउडर, आधा चम्मच चन्दन पाउडर, एक चम्मच शहद और आधा चम्मच नींबू का रस मिलाकर गर्दन और चेहरे पर १५ मिनट तक लगाये रहें फिर धो डालें। चेहरा साफ करने के लिये यह उत्तम सामग्री है।
- नींबू की कोमल पत्तियां और हल्दी के मिश्रण को पका लें। इस मिश्रण को रोज चेहरे पर लगाने से मुहांसे दूर होते हैं तथा चेहरे पर चमक आ जाती है।
- उबलते दूध में एक नींबू का रस और एक चम्मच घी डालें। एक घंटे बाद इस मिश्रण को चेहरे, हाथों और पैरों पर लगायें। इसे पूरी रात लगा रहने दें फिर गरम पानी से धो डालें। इस मिश्रण का नियमित प्रयोग त्वचा को चमकदार बनाता है।
- सूखे नींबू के छिलके शिकाकाई में मिलाकर प्रयोग करें।

प्रोटीन का सदुपयोग

आजकल ऐसे लोग कम ही मिलेंगे जिन्हें प्रोटीन की थोड़ी बहुत जानकारी भी न हो। कम से कम वे इतना तो जानते ही हैं कि अंडा, दूध, मांस आदि खिलाने से बच्चों का अच्छा विकास होता है। अनपढ़ वर्गों में भी लंबी बीमारी के बाद शरीर में मजबूती लाने के लिए जितने भी खाद्य पदार्थ दिए जाते हैं, वे सब प्रोटीन समृद्ध ही होते हैं। अनुभव से हम जानते हैं कि इनमें कोई ऐसा तत्व है जो शरीर की वृद्धि को बढ़ावा देता है। वैज्ञानिक उसी तत्व को प्रोटीन कहते हैं। प्रोटीन शरीर की कोशिकाओं का निर्माण करता है। पानी को छोड़ शरीर के हर एक तत्व का निर्माण प्रमुख रूप से प्रोटीन से ही होता है। इसकी कमी से बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास रुक जाता है और वयस्क व्यक्ति भी कमजोर होकर बीमारियों से लड़ने की शक्ति खो बैठता है।

प्रोटीन अमीनो अम्लों के संयोग से बनता है। इसमें १८-२० प्रकार के अमीनो अम्ल होते हैं। लेकिन शरीर की आवश्यकताओं की दृष्टि से इनमें से केवल ९ ही महत्व रखते हैं। दूध, मांस, अंडा, दाल वगैरह प्रोटीन समृद्ध खाद्य पदार्थ काफी महंगे पड़ते हैं। इसलिए इनका शरीर में सही उपयोग होना जरूरी है यानी जो काम इनसे अपेक्षित है ये वहीं संपन्न करें। लेकिन अक्सर देखा गया है कि अधिकांश प्रोटीन का उपयोग कोशिका निर्माण के बजाए ऊर्जा उत्पादन के लिए हो जाता है। यह तब होता है जब शरीर को ऊर्जा देने वाले कार्बोहाइड्रेट, वसा जैसे तत्व पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते हैं। इन तत्वों के अभाव में शरीर अपने दिन प्रतिदिन के काम काज के लिए आवश्यक ऊर्जा, प्रोटीन से प्राप्त कर लेता है। प्रोटीन दुरुपयोग को रोकने का एक सरल उपाय है। आप भोजन में ऊर्जा देने वाले खाद्य पदार्थ- गेहूं, चावल आदि खाद्यान्न, वसा तेल, फल, सब्जी, कन्द इत्यादि पर्याप्त मात्रा में शामिल करें ताकि शरीर में ऊर्जा की कमी न पड़े।

शरीर की प्रोटीन भंडारण क्षमता सीमित होती है। इसलिए जो भी प्रोटीन भोजन द्वारा शरीर में प्रवेश करता है पहले उसका अमीनो अम्लों में विघटन हो जाता है और आवश्यक मात्रा में इन्हें ग्रहण कर लेने के बाद शेष को शरीर मूत्र के जरिए विसर्जन करता है। कभी-कभी इस अतिरिक्त प्रोटीन का कुछ अंश चर्बी में परिवर्तित हो कर त्वचा के नीचे जमा हो जाता है और हृदयरोग जैसे मोटापे से संबंधित रोगों को बढ़ावा देता है।

प्रोटीन की उपयोगिता उस में उपस्थित अमीनो अम्लों पर निर्भर करती है। हमारे भोजन में आमतौर पर चावल, गेहूं इत्यादि अनाज या मोटे अनाजों की प्रधानता होती है। उसके बाद कंद, सब्जी, तरकारी दालों का स्थान है। दूध और दुग्ध उत्पाद एवं मांसादि पदार्थों की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। अर्थात् औसत व्यक्ति को खाद्यान्न और तरकारी जैसे वनस्पति जन्य प्रोटीनों में किसी न किसी अमीनो अम्ल की कमी रहती है जिस के कारण शरीर में उनका उचित उपयोग नहीं हो पाता है। अगर इस कमी को पूरा कर दिया जाए तो शरीर प्रोटीन का अधिक लाभ उठा सकता है। इसका एक आसान तरीका है दैनिक भोजन में एक साथ कई प्रकार के, विशेषकर ऐसे खाद्य पदार्थ शामिल करना जिनके प्रोटीन एक दूसरे की कमी को पूरा कर सकते हैं। अगर आप शाकाहारी हैं तो चावल गेहूं के साथ साथ दाल और तिल, मूंगफली जैसे तिलहनों का भी प्रयोग करें क्योंकि इनके प्रोटीन अपने आप में पूर्ण नहीं हैं, मगर एक दूसरे के पूरक हैं। यानी जो अमीनो अम्ल खाद्यान्नों में नहीं होते वे दालों में होते हैं और जो दालों में नहीं हैं वे खाद्यान्नों में होते हैं। दुग्ध प्रोटीन केसीन में सभी मुख्य अमीनो अम्ल प्रचुर मात्रा में उपस्थित होने के कारण वह किसी भी अपूर्ण प्रोटीन में अमीनो अम्ल की कमी को पूरा करके उसकी गुणवत्ता को बढ़ा सकता है। इसलिए हर भोजन के साथ कम मात्रा में ही सही, दूध, दही या कोई भी दुग्ध उत्पाद शामिल करने से बाकी प्रोटीनों के उपभोग में सहायता मिलती है।

कई मांसाहारी कभी कभार मांस खाते हैं। लेकिन जब खाते हैं तो जी भर कर खाते हैं अच्छा यह होता कि कम खाएं पर बार बार खाएं। आप मांसाहार का कम उपयोग करते हों तो जरा सावधान रहें...कहीं बुढ़ापे में आपको ऑस्टियोपोरोसिस रोग जिस में हड्डियां अपनी मजबूती खोकर बिल्कुल नरम पड़ जाती हैं, का शिकार न होना पड़े। वैसे तो कुछ प्रांतों में

प्रोटीन, अमीनो अम्लों के संयोग से बनता है।
इसमें १८-२० प्रकार के अमीनो अम्ल होते हैं।
लेकिन शरीर की आवश्यकताओं की दृष्टि से इनमें से केवल ९ ही महत्व रखते हैं। दूध, मांस, अंडा, दाल वगैरह प्रोटीन समृद्ध खाद्य पदार्थ काफी महंगे पड़ते हैं।
इसलिए इनका शरीर में सही उपयोग होना जरूरी है यानी
जो काम इनसे अपेक्षित है ये वही संपन्न करें।
लेकिन अक्सर देखा गया है कि अधिकांश प्रोटीन का उपयोग कोशिका निर्माण के बजाए ऊर्जा उत्पादन के लिए हो जाता है।

हरी पत्तियों का पोषण में महत्व

बहुत ही उपयोगी पोषक तत्व हरी पत्तियों से लौह, प्रोटीन, वसा आदि, प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

हरी वनस्पति का चुनाव

वैसे तो बहुत सी हरी वनस्पतियाँ उपलब्ध हैं लेकिन सभी पत्तियों से प्रोटीन आहार नहीं बनाया जा सकता। जिन हरी पत्तियों से प्रोटीन आहार बनाया जा सकता है, उनमें निम्न गुण होने चाहिए।

- प्रोटीन की अधिक मात्रा
- मुलायम अथवा गूदेदार
- रेशे की कमी
- लसलसेपन का न होना या कम होना

हरी पत्तियों से प्रोटीन बनाने की विधि

हरी पत्तियों से बहुत ही सरल ढंग से आहार बनाया जा सकता है

इस आहार के बनाने में ताजी हरी पत्तियों को कूचकर या दबाकर अधिक से अधिक जूस निकालते हैं। छोटे पैमाने पर कीमा बनाने वाली मशीन का प्रयोग करते हैं या सिल पर पत्तियों को कूच लेते हैं। इसके पश्चात् लांग क्लाथ से अथवा मजबूत कपड़े से गूदे को निचोड़कर जूस प्राप्त कर लेते हैं बड़े पैमाने पर इस आहार के बनाने के लिए स्क्रू–प्रेस का प्रयोग करते हैं, जिससे एक घंटे में १००–२०० किग्रा० हरी वनस्पति से जूस निकल सकता है। आप का प्रयोग करके जूस को लगभग ८०° सेंटीग्रेड तक गर्म करते हैं। गर्म करने से प्रोटीन स्कन्दित हो जाता है, जिसे छान लेते हैं और अम्लीय जल से धो लेते हैं। इस प्रकार बने प्रोटीन को यदि तुरन्त उपभोग करना हो तो उसका उपयोग बगैर सुखाये ही किया जा सकता है। सुखाकर प्रोटीन पाउडर बनाकर उपयोग में ला सकते हैं।

हरी पत्तियों से प्राप्त प्रोटीन आहार अत्यन्त पौष्टिक होता है। प्रोटीन अधिक मात्रा में होने के अतिरिक्त इसमें वसा, कार्बोहाइड्रेट एवं खनिज तत्व भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। कैरोटीन एवं जैन्थोफिल नामक पौष्टिक वर्णक भी इसमें पाये जाते हैं। पत्तियों से बने प्रोटीन आहार में बीटा–कैरोटीन एवं वसा प्रचुर मात्रा में होते हैं। जिनसे विटामिन 'ए' बनता है। अतः इस आहार के उपयोग से विटामिन 'ए' की कमी से होने वाले ऑख के अंधेपन, रोशनी कम हो जाना आदि से बचाव हो सकता है। अधिकांश दालों की तुलना में पत्तियों से बने प्रोटीन आहार में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। छोटे-छोटे बच्चों में प्रोटीन की कमी से 'क्वासियोर कोर' नामक भयंकर बीमारी हो जाती है पत्तियों द्वारा बने प्रोटीन आहार के सेवन से बच्चों की यह बीमारी दूर हो जाती है।

पत्तियों की प्रोटीन से व्यंजन

पत्तियों से बने प्रोटीन पाउडर को गेहूँ, चावल अथवा मक्के के आटे के साथ ६–९ प्रतिशत की दर से आसानी से मिलाया जा सकता है और उससे मनपसन्द नमकीन और मीठे व्यंजन बनाये जा सकते हैं। पत्तियों से बने प्रोटीन पाउडर को गेहूँ, चावल अथवा मक्के के आटे के साथ मिला देने से जो व्यंजन बनता है उनकी पौष्टिकता बढ़ जाती है, खासतौर पर प्रोटीन और आवश्यक अमीनो अम्ल की मात्राएं अधिक बढ़ जाती हैं। जिन लोगों को प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता, उनके लिए पत्तियों से बना प्रोटीन आहार प्रोटीन, खनिज तत्व एवं विटामिन उपलब्ध कराता है।

(साभार– कृषि चयनिका, अप्रैल– जून' ९२)

मांसाहार के साथ छाछ सहित कोई भी दूध का उत्पाद लेना मना है। ऐसी स्थिति में शरीर को मांसाहार के जरिए हड्डियों के लिए आवश्यक फॉस्फोरस तत्व तो मिल जाता है लेकिन दूध के अभाव में कैल्शियम की कमी पड़ जाती है। इससे तत्काल कोई हानि नहीं पहुंचती मगर निरन्तर यही स्थिति रही तो उम्र के बढ़ते बढ़ते हड्डियां कमजोर पड़ने लगती हैं।

कुछ सर्वेक्षणों से यह भी पता चला है कि जंतुजन्य प्रोटीनों की मात्रा अत्यधिक हो जाने पर उनमें उपस्थित मिथियोनीन अमीनो अम्लों के कारण खून में कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ने की संभावना है जिससे दिल की बीमारी हो सकती है।

भोजन पकाते समय ताप का प्रभाव प्रोटीन पर पड़ता है। ताप की तीव्रता, अवधि और प्रोटीन की संरचना के अनुसार यह प्रभाव बुरा भी हो सकता है अच्छा भी। साधारणतः प्रोटीनयुक्त पदार्थ, विशेषकर जंतुजन्य खाद्यों को धीमी या मद्धिम आंच पर पकाने की सिफारिश की जाती है। इनसे प्रोटीन ऊतकं नरम हो जाते हैं। लेकिन आंच बहुत तेज, साथ–साथ लंबी अवधि तक रखी गयी हो तो प्रोटीन सख्त बन जाते हैं, उनकी पचनीयता भी कम हो जाती है। अगर आपको मांस आदि पकाते समय अधिक समय लगने की आशंका हो तो आंच बढ़ाने के बजाय आप उस में टमाटर या वैसा ही कोई अम्लीय पदार्थ डालिए। कच्चे पपीते के टुकड़े डालने से भी मांस नरम पकता है, तो ऐसे प्रोटीन को बेकार होने से बचाया जा सकता है।

(साभार– विज्ञान प्रगति)

टमाटर

जगदीश चन्द्र 'रंजन'

लाल रंग का गोल मटोल रसदार दिन प्रतिदिन खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग में आने वाले टमाटर का पौधा धतूरा भट-कटैया व तम्बाकू जैसे विषैले कुल का ही एक पौधा है परन्तु इसमें विषैले गुण नहीं होते हैं।

बात उन्नीसवीं शताब्दी की है जब संयुक्त राष्ट्र अमरीका के न्यूजर्सी नामक प्रान्त के निवासी रार्बट गिबन ने लोगों को यह सूचित कर चकित कर दिया कि वह एक अनोखा फल खायेंगे। यही रसदार 'लाल टमाटर' था जिसको लोगों ने पहले न कभी देखा था, न ही सुना था।

टमाटर का उल्लेख सर्वप्रथम सन् १५५४ ई० के इटली के मैथियोलस के लेखों में है। इटलीवाले इसे प्वाइन्डोरों फ्रांसीसी पोमी डि एमर कहते हैं। सन् १६९५ ई० में इसे अंग्रेजी नाम टोमैटो दिया गया। वनस्पति वैज्ञानिकों ने इसे "लाइकोपर्सिकम एस्कूलेन्टम" के नाम से सम्बोधित किया। शनैः शैनेः टमाटर संसार के समस्त देशों में उगाया जाने लगा। अधिकांश लोग टमाटर के पौधों को इसकी पत्तियों तथा लालरंग के मनमोहक फलों के कारण ही अपने उद्यानों व घरों में लगाते थे। औषधि के रूप में टमाटर का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

आजकल टमाटर की खेती बहुत बड़े स्तर पर की जा रही है। अब इसका उपयोग न केवल इसके ताजे फलों तक ही सीमित रह गया है वरन् विभिन्न ऋतुओं में भी यह मिलता रहता है। इसका रस, पेस्ट, कैचप व चटनी के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। कुछ लोग अपने उद्यान की सुन्दरता बढ़ाने के लिए इसके पौधे लगाते हैं जिसमें लाल पके टमाटर अत्यन्त आकर्षक लगते हैं।

टमाटर में फोलिक अम्ल, पैन्टीथीनिक अम्ल, विटामिन 'के' व 'ई' भी पाई जाती है। वे टमाटर जो सूर्य के प्रकाश से ही पेड़ों में धीरे-धीरे पकते रहते हैं उनमें ऐस्कार्बिक अम्ल की मात्रा उन फलों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है जो छांव में पकाये जाते हैं।

जंगली टमाटर में कृषि द्वारा उत्पादित टमाटर की तुलना में ऐस्कार्बिक अम्ल की मात्रा अधिक होती है। टमाटर में चीनी की मात्रा भी पाई जाती है जिसमें ग्लूकोज, सुक्रोज, तथा ऐफीनोज मुख्य है। फलों में ग्लूकोज की अधिकता उसके पकने के साथ-साथ बढ़ती जाती है। परन्तु हरे टमाटर में पाया जाने वाला स्टार्च (माँड) पकने के साथ-साथ कम होता जाता है।

हरे टमाटर में 'प्रोटोपेक्टिन' स्वतंत्र रूप में पाया जाता है जो धीरे-धीरे लुप्त होता जाता है। कच्चे व पके टमाटरों में 'टिस्टोफेन' को छोड़कर सभी आवश्यक 'अमीनोअम्ल' भी पाये जाते हैं।

कार्बनिक अम्ल टमाटर को स्वादिष्ट बनाता है। इनमें पाये जाने वाले मुख्य अम्ल साइट्रिक अम्ल, मेलिक अम्ल, एसिटिक अम्ल व फार्मिक अम्ल हैं सड़े-गले फलों में आक्जेलिक व टार्टरिक अम्ल पाया गया है।

कच्चा टमाटर पूर्णतया पक जाने पर लालरंग में परिवर्तित हो जाता है जिसका कारण है उसमें पाया जाने वाला लाइकोपिन पकने के साथ हरे टमाटर में लाइकोपिन की मात्रा शून्य होती है परन्तु इसकी मात्रा बढ़ने लगती है। इसके अतिरिक्त इनमें टोमैटिन तथा सोलानीन नामक क्षाराभ (एल्कलाएड) भी पाये जाते हैं।

में कुछ खनिज पदार्थ भी प्राप्त हुये हैं जिनमें सोडियम पोटैशियम कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, तांबा, फास्फोरस, गंधक, क्लोरीन, कोराल्ट, बोरान, ऐलुमीनियम तथा आयोडीन प्रमुख है।

पृष्ठ ४२ का शेष . . . अनार . . .

- चूर्ण बना लें एक-एक चम्मच की मात्रा में यह चूर्ण सेवन करने से, अरुचि, भूख की कमी, गले की खराश, अपच, कब्ज, खांसी आदि रोग नष्ट होते है।
- अनार का छिलका २० ग्राम, काली मिर्च १० ग्राम, छोटी पीपर २० ग्राम, जवाखार ५ ग्राम सब को महीन चूर्ण करें इसमें ८० ग्राम गुड़ मिलाकर छोटे बेर बराबर गोलियां बना लें। एक-एक गोली दिन में तीन बार चूसने से हर प्रकार की खांसी जाती है।
- मुहासे, झाइयां, कील आदि में अनार के फल के छिलके हल्दी और लोध्र को महीन पीस कर चेहरे पर भाप देकर लेप करें।
- फल के छिलके को उबाल कर उस पानी से घावों को धोने से घाव जल्दी भरता है।
- आंखों में जलन होने पर अनार का रस डालें।
- सिर में जहाँ बाल गायब होते हों, अनार के पत्तों को पीसकर दिन में दो बार लेप करें।
- दांतों या मसूड़ों से खून आता हो तो अनार के फूलों के चूर्ण से मंजन करने से आराम मिलता है।
- बच्चों को नकसीर फूटने पर अनार के फूल का रस नाक में डालें तथा तलुओं पर मालिश करें तुरन्त आराम हो जाएगा।
- पुराने दाद पर अनार के पत्तों को पीसकर लेप करें।
- मधुमक्खी, बर्रे आदि के काटने पर अनार के पत्तों को पीसकर तुरन्त लेप कर दें।
- अनार के पत्तों को पीसकर ट्रिकिया बना लें इन्हें घी में भूनकर बांधने से बवासीर के मस्से नष्ट होते है।

केला

डा० साद उस्मानी, लखनऊ

यद्यपि मुख्य रूप से केला भारत बर्मा और इन्डोनेशिया में उगाया जाता है, यह विश्व के लगभग सभी भागों में पाया जाता हे। प्राचीन काल से ही केले का पेड़ अपने औषधीय व पौष्टिक गुणों के लिये प्रसिद्ध है। यूनानी औषधीय ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है। फल के साथ-साथ केले के पेड़ के सभी भाग पोषण व औषधीय महत्व के होते है।

भाषावार नाम- हिन्दी-केरा, केला, बंगला-काला, मराठी-केल, गुजराती-केला, तमिल और मलयालम-वाज पनम, तेलगू-अरटीपंडू, संस्कृत-कदली फल,अंग्रेजी-प्लेनटेन, बनाना, लैटिन-मूसा सैपियन्टम।

केले की खेती इसके भूमिगत तने के टुकड़ों द्वारा होती है क्योंकि इसके फल में बोने योग्य बीज नहीं होते है केले का फल सरस, स्वादिष्ट और बीज रहित होता है जो छिलके द्वारा सुरक्षित होता है तथा ४ से १० इंच तक लम्बा होता है।

फल के तत्व- केले के फल में शरीर के तंतुओं का निर्माण करने वाले प्रोटीन, विटामिन और खनिज होते हैं। इसमें पानी, लवण और प्रोटीन की मात्रा कम होती है पर कार्बोहाइड्रेट अधिक होते हैं। फल में पायी जाने वाली शर्करा शरीर में तुरन्त अवशोषित होकर शक्ति देती है और थकावट दूर करती है। यह कैल्शियम, फास्फोरस, मैंगनीज, पाइरीडाक्सीन, फोलिक एसिड, नाइट्रोजन, पेक्टिन, अमीनो अम्ल, विटामिन ए और सी तथा अन्य पौष्टिक तत्वों और इन्जाइमों का भंडार है।इसकी प्रकृति क्षारीय है।

केले से लाभः केले का सेवन करने से आँख, श्लैष्मिक झिल्लियां और त्वचा स्वस्थ रहती है और इस कारण युवा बने रहने में बहुत महत्वपूर्ण है। विष नाशक होने के कारण यह बैक्टीरिया का प्रभाव कम करता है, शरीर में एलर्जी प्रतिरोधक क्षमता का विकास करता है और प्रोटीन की वृद्धि करता है। कब्ज और बवासीर में उपयोगी है। अल्सर के मरीजों के अम्लीय स्रावों को निष्प्रभावी बनाकर लाभ पहुंचाता है। केला आमाशय की झिल्ली को ढ़ककर मरीज को जलन और अल्सर से लाभ दिलाता है।

यूनानी चिकित्सक फल को अल्सरेटिव कोलाइटिस व ऐंठन में प्रयोग कराते हैं। दस्त रोग में साधारण नमक के साथ कुचला हुआ केला लाभदायक है। गठिया और बाई के रोगियों में केवल ८-९ केलों का आहार बहुत लाभदायक है। केले से युग्मक प्रोटीन के निर्माण में वृद्धि होती है अतः यह रक्ताल्पता के रोगियों में हीमोग्लोबिन के स्तर को बढ़ाकर लाभ पहुंचाता है। मोटे व्यक्तियों को कुचले केले और मक्खन रहित दूध का आहार लेने की सलाह दी जाती है। क्षय, पीलिया और टाइफाइड के ऐसे रोगी जिनका वजन कम होता जा रहा हो खूब पके कुचले केले और नारियल पानी का एक गिलास पेय बनाकर एक चम्मच शहद या ग्लूकोज मिलाकर लें तो वजन घटना रुक जाता है तथा बढ़ने भी लगता है।

जलन और घाव में पके केले को कुचल कर लेप करने से जलन दूर होती है और आराम मिलता है। केले की कोमल पत्तियों का लेप भी फोड़े फुन्सियों में लाभदायक है।

केले की कुचली हुई कोमल जड़ें जननांगों और श्वसन नली के रक्तस्राव को बन्द करती हैं। इसकी जड़ों को घी और चीनी में मिलाकर लेने से सूजाक के रोगियों को लाभ होता है। शराब के नशे में इसकी कोमल जड़ों का ठंडा पेय नशा दूर करता है। अनियमित, अधिक अथवा बहुत दर्द के साथ मासिक स्राव में केले का फूल दही में मिलाकर लेने से लाभ पहुंचाता है। केले का फूल मधुमेह में भी लाभदायक है।अफीम के नशे की स्थिति में केले की पत्ती का मूल (जिससे तना बनता है) का रस आश्चर्यजनक रूप से लाभ पहुंचाता है। केले के फल का छिलका और कच्चे केले का गूदा रोधी और बैक्टीरिया को नष्ट करने वाला होता है।

दिल के मरीजों के लिए

दिल का दौरा पड़ने पर रोगी का अस्पताल पहुंचने से पहले ही तात्कालिक उपचार करना अब अधिक सुविधाजनक होगा। उत्तरी आयरलैंड के अल्सटर विश्वविद्यालय के डाक्टरों द्वारा विकसित एक नई तकनीक में मरीज के सीने पर एक कागज जैसी पतली प्लास्टिक की शीट चिपकाई जाती है जिसमें ६४ इलैक्ट्रोड्स लगे होते हैं। प्रचलित विधि में यह सभी अलग-अलग चिपकाये जाते हैं। इलैक्ट्रोड्स लगी यह प्लास्टिक शीट एक मॉनीटर से जोड़ी जाती है जो इलैक्ट्रोड्स से प्राप्त सूचना को अपनी स्क्रीन पर दर्शाता है। इससे मरीज के दिल का पूरा नक्शा सामने आ जाता है। साथ ही इससे दिल में जमे रक्त के थक्के को हटाने के लिए दी जा रही दवाओं के प्रभाव का भी पता लगाया जा सकता है। मरीज के दिल की यह सारी जानकारी एक स्मरण कार्ड पर दर्ज होती है, जिसे अस्पताल के विशेषज्ञ गहराई से जाँच परख सकते हैं। शीघ्र ही यह उपकरण चिकित्सा वाहनों में उपलब्ध हो सकेगा।

(विज्ञान प्रगति, अक्टूबर '९३)

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा

जनोन्मुखी प्रशासन के लिए सार्थक पहल

ऊर्जा

- विद्युत उत्पादन बढ़ाने के लिए राज्य विद्युत परिषद को 80 करोड़ रुपये की अतिरिक्त धनराशि। 30 करोड़ रुपये अब तक अवमुक्त।
- 500-मेगावाट की आनपारा-बी तापीय परियोजना प्रारम्भ। दिसंबर 1993 तक 500-मेगावाट की एक और इकाई शुरू होगी।
- विद्युत चोरी अब 'रासुका' के अंतर्गत दंडनीय अपराध।

सड़कें एवं पुल

- ग्रामीण क्षेत्रों में 1200 कि.मी. सड़कों के निर्माण के लिए अतिरिक्त 50 करोड़ रु. स्वीकृत।
- प्रदेश में पिछले दो माह में 25 अपूर्ण पुलों के निर्माण के लिए 20 करोड़ रु. की धनराशि स्वीकृत।

स्वास्थ्य

- स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाओं में अपेक्षित सुधार के लिए 16 करोड़ रु. स्वीकृत। यह राशि बजट में स्वीकृत राशि के अतिरिक्त है।

बुनकरों को ऋण माफ़

- ग्रे-ग्रामीण क्षेत्रों के 70 हजार बुनकरों के 46.15 करोड़ रु. के ऋण माफ। बुनकर परिवार के तीन लाख सदस्यों को राहत।

उद्योग

- उद्योगों को प्रदेश में आकृष्ट करने के लिए जोरदार पहल। उच्चतम स्तर पर उद्योगपतियों से सीधा संवाद तथा उद्योगों की समस्याओं के निराकरण की कारगर पहल।

ग्रामीण अंचलों का विकास

- प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास के लिए 'नाबार्ड' से कुल 100 करोड़ रु. स्वीकृत।
- ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए 805 करोड़ रुपया-पिछले वर्ष की तुलना में 200 करोड़ रुपये अधिक।
- विद्युत चालित सिंचाई पंपों के ऊर्जीकरण के लिए 25 करोड़ रुपये की व्यवस्था।
- प्रदेश के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में राजस्व वसूली स्थगित। उत्पीड़क कार्रवाई नहीं।

पेयजल

- प्रदेश के नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के पानी के लिए 6,000 अतिरिक्त हैंड पम्प स्वीकृत।

उत्तरांचल विकास

- उत्तरांचल विकास के लिए अतिरिक्त 5 करोड़ रुपये का बन्दोबस्त।
- पर्वतीय क्षेत्रों में लघु जल विद्युत परियोजनाओं द्वारा 300-मेगावाट बिजली उत्पादन की 1200 करोड़ रुपये की योजना तैयार।
- वन संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत अवरुद्ध विकास कार्यों को अनुमति के लिए 31 अगस्त तक प्रस्ताव प्रस्तुत कर शीघ्र निराकरण।

प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव

स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी

- स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की पेंशन में 100 रु. की वृद्धि।

अल्पसंख्यक वर्ग एवं उर्दू

- उ.प्र. उर्दू अकादमी तथा फखरुद्दीन अली अहमद मेमोरियल कमेटी का पुनर्गठन
- उ.प्र. उर्दू अकादमी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पेंशन, ग्रेच्युटी आदि की सुविधाएं।
- तिब्बी अल्पसंख्यक मेडिकल कालेजों को विश्वविद्यालय से सम्बद्धता का निर्णय।
- अरबी अध्यापकों को वेतन का भुगतान शुरू।

शान्ति व्यवस्था

- सभी त्यौहार शांति पूर्वक संपन्न। प्रदेश में शांति व्यवस्था सामान्य।
- 15 अगस्त 1993 को प्रदेश के प्रथम महिला पुलिस थाना का शुभारंभ।

शिक्षा

- 729 करोड़ रुपये की 'सबके लिए शिक्षा' परियोजना स्वीकृत।

हरित उत्तरे प्रदेश

- "फोरेस्ट कवर" के विस्तार के लिए प्रदेश में इस वर्ष 39 करोड़ पौधे लगाये जायेंगे।

"अभी तक दो महीनों में प्रदेश के 35 जिलों के भ्रमण के दौरान मैंने महसूस किया है कि प्रदेश की जनता में विकास के लिए बहुत ललक है। इसलिए सरकार की पूरी ताकत इसमें लगी है कि प्रदेश में शांति और सद्भाव का वातावरण बना रहे और विकास के कार्यक्रमों में कोई अवरोध उत्पन्न न हो।"

-मोती लाल वोरा, राज्यपाल, उ.प्र.

शांति, सद्भाव और विकास : उज्जवल भविष्य का है प्रयास

सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

अनुपान

पं० काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

आयुर्वेदिक औषधि योजना में अनुपान का विशिष्ट महत्व है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि अनुपान औषधि मुखमार्ग से पेट में पहुँचाने का साधन है ताकि चूर्ण आदि मुँह या गले में चिपक कर न रह जाय। इसका एक लाभ यह भी है कि तीखी/कड़वी दवा मुँह में अधिक समय तक रहकर जलन आदि पैदा न करे। प्रायः इसीलिए पानी का अनुपान के रूप में प्रयोग बताया जाता है। अनुपान का अर्थ है– *अन्नादनु पश्चात्पीयते यत्*–अन्न ग्रहण करने के बाद जो पान किया जाय। अनुपान का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु को खाने के बाद पी जाने वाली तरल चीज़।

प्रायः अनुपान के रूप में पानी, दूध या शहद का प्रयोग विहित है। पानी सर्वोत्तम अनुपान है–

'अनुपाने तु सलिलमेव श्रेष्ठं सर्वरसयोनित्वात् सर्वभूतसात्म्यत्वात् जीवनादिगुणयोगाच्च"(अष्टांग सं. सू.)

पानी सभी रसों का मूल है, यह सभी प्राणियों के लिए सात्म्य होता है और इसमें जीवनकारक गुण है।

चरक सूत्र में अनुपान के गुण वर्णित हैं:–

"अनुपानं तर्पयति प्रीणयति ऊर्जयति बृंहयति पर्याप्तिं अभिनिर्वर्तयति भुक्तमवसादयति अन्नसंघातमावर्दयति क्लेदयति जरयति आहारस्य सुखपरिणामितां आशुव्यवायितां चोपजनयति आयुषे बलाय च भवति।"

अर्थात् अनुपान कमी पूरी करता है, रुचि उत्पन्न करता है, उत्साह बढ़ाता है, पुष्टि देता है तथा तृप्ति देता है। अनुपान से आहार नीचे जाता है यह आहार को गीला करता है और मुलायम कर उसे शरीर के घटकों में बदलकर संपूर्ण शरीर में भेजता है और बल तथा आयु की वृद्धि करता है। इससे अनुपान की महत्ता स्पष्ट है।

तदादौ कर्शयेत्पीतं स्थापयेन्मध्यसेवितम्
पश्चात्पीतं बृंहयति तस्माद् वीक्ष्य प्रयोजयेत्।।
(सु. सू.)

अनुपान यदि भोजन के पूर्व लिया जाय तो कृशता उत्पन्न करता है। भोजन के मध्य में लेने पर यथास्थिति बनाये रखता है और बाद में लेने पर पुष्टिकारक होता है।

वात दोष की दशा में स्निग्ध और उष्ण अनुपान, कफ रोग में रूक्ष और उष्ण तथा पित्त दोष में मधुर और शीतल अनुपान विहित है। इस प्रकार अनुपान का प्रयोग हितकारी होता है।

सिद्ध चिकित्सा से एड्स की रोकथाम का दावा

सिद्ध चिकित्सकों का दावा है कि उनकी चिकित्सा से 'एड्स' को रोका जा सकता है। सिद्ध चिकित्सा का जन्मस्थान तमिलनाडु माना जाता है। इस चिकित्सा में लोहा, जिंक, तांबा, सोना और चांदी जैसी धातुओं का इस्तेमाल किया जाता है। एड्स के इलाज की घोषणा इंडियन मेडिकल प्रेक्टीशनर्स कोआपरिटव फार्मेसी स्टोर्स (इम्पकोप्स) के अध्यक्ष एन. कुमारदास ने की। इस साल की शुरुआत में इम्पकोप्स ने एच.आई.वी. से संक्रमित १२ मरीजों का सिद्ध चिकित्सा से उपचार किया एवं १२ में से सात मरीजों को इस चिकित्सा से फायदा पहुंचा उनके वजन में व एक से दो किलोग्राम की बढ़ोत्तरी हुई। अच्छे होते स्वास्थ्य के लिए अच्छे लक्षण हैं। एड्स रिसर्च फाउंडेशन आफ इंडिया के एस. सुंदरम का कहना है कि हमारे कई मरीजों ने हमसे कहा कि हम सिद्ध चिकित्सा से इलाज कराना चाहते हैं।

शब्द कोष

वैद्य श्रीनिवास पाण्डेय, लखनऊ

प्रावृट्– वर्षा ऋतु

रक्तमोक्षण– आयुर्वेद शैली की एक चिकित्सा है जिसमें अशुद्ध रक्त को सिराओं का वेध करके शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

आस्यासुख– मुख के सुख के लिए हर समय मीठे पदार्थों या मसालेदार चटपटी वस्तुओं का सेवन करना।

सात्म्य– किसी आहार विहार का सतत प्रयोग करते हुए अभ्यस्त हो जाना।

आस्टियोमेलाइटिस– अस्थिमज्जा शोथ अर्थात् हड्डियों के भीतरी भाग में भरे हुए मज्जा में संक्रमण या किसी रोग के कारण मवाद भर जाना।

अस्थि अर्बुद– हड्डियों का कैंसर।

आमवात– इसे अस्थिसंधि शोथ या गठिया कहते हैं। कुपित दोष एवं रक्त जोड़ों का आश्रय लेकर सूजन एवं गम्भीर वेदना करते हैं, कभी–कभी बुखार भी बना रहता है। इसे ऐलोपैथी में रुमेटाइड आर्थ्राइटिस कहते हैं।

पुरीष– मल

क्वाशियोरकर– यह बच्चों में अधिक होने वाला एक प्रकार का रोग है जो जिसका मूल कारण प्रोटीन की कमी है। इसमें बच्चे का विकास ठीक तरह से नहीं हो पाता।

सायनोवियल फ्लूइड– यह एक प्रकार का द्रव पदार्थ है जो शरीर के जोड़ों में पाया जाता है एवं इसकी कमी होने पर जोड़ों को मोड़ने आदि में तकलीफ होती है।

अस्थिभन्जन ज्वर– हड्डियों को तोडने वाला बुखार जिससे अधिकांशतः हड्डियों के समूह अधिक पीड़ित होते हैं। इसमें डण्डे से आघात करने जैसी पीड़ा होती है इसलिए इसे दण्डक ज्वर भी कहते हैं।

औपसर्गिक रोग– छूत रोग अर्थात् वह रोग जो एक व्यक्ति से दूसरे को फैलता है।

नेत्र रोग का स्वरूप और सामान्य उपचार

डॉ० भालचन्द्र जी० साठ्ये, मिरज

मनुष्य का जो असाधारण तत्व है वह "ज्ञानग्रहण" कर्म है इसकी पूर्णता "मन" से होती है। ज्ञानेन्द्रियों में "चक्षु" अथवा नेत्र एक अति महत्वपूर्ण इंद्रिय है।

नेत्र शारीर : पंचमहाभूत के "तेज" महाभूताधिक्य से नेत्र बनते हैं पूर्वकपालास्थि जतूकास्थि और झर्झरास्थि से बने "अक्षिकोटर" में गोलाकार नेत्रगोलक स्थित होता है। नेत्र के मध्य भाग में कृष्ण मंडल में स्थित दृष्टि मंडल के शीत विवर में दृष्टि स्थान होता है जो रूपग्रहण कार्य करता है।

नेत्र का कार्य नेत्र में स्थित आलोचक पित्त से होता है। रूप का ग्रहण करना जो शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित रंग बिरंगा और ऐसे सात प्रकार का होता है।

रोग उत्पन्न होने के निम्न मूलभूत कारण बताये गये हैं–

- असात्म्येंद्रियार्थ संयोग,
- प्रज्ञापराध
- परिणाम

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग का सरल अर्थ यह होता है कि इंद्रियों के लिए असह्य पीड़ा उत्पन्न करने वाले विषयों के साथ सम्पर्क होना। इसके तीन प्रकार हैं–

- अतियोग
- मिथ्यायोग
- हीन योग

वेल्डिंग, सिनेमा ऑपरेटर, टी० वी० अतियोग के उदाहरण हैं। इसीलिये नवजात शिशु की आंखों को तेज रोशनी से बचाने के लिए उसे मंद प्रकाश में रखते हैं। सूर्यग्रहण देखने से नेत्रपटल का विनाश तथा अप्रिय दृश्य दर्शन मिथ्यायोग है। अस्पष्ट प्रकाश में अध्ययन सूक्ष्म वस्तुओं का अधिक काल तक निरीक्षण ही अति योग है! इसके साथ प्रज्ञापराध, परिणाम तथा काल से प्रभावित होकर व्याधि की उत्पत्ति हो जाती है।

नेत्र रोग के सामान्य कारण : धूप में देर तक रहने के उपरान्त एकाएक शीतल जल में स्नान करना। दूर की वस्तुओं का अधिक काल तक निरीक्षण। निरन्तर रुदन, कोप, क्लेश, तथा धुएं और धूल का आँखों के साथ संपर्क होने से, वमनादि वेगों का धारण करने से या अधिक मात्रा में धूम्रपान करने से विशेषतः नाक से सिगरेट का धुआं निकालने के कारण नेत्र में वातादि दोष प्रकुपित हो जाते हैं और नेत्र में रोग उत्पत्ति होती है।

नेत्र रोग की संप्राप्ति : उपरोक्त हेतु सेवन करने से दोष प्रकुपित होकर ऊर्ध्वगामी हो जाते हैं और नेत्र सिराओं में से अवयव को दूषित कर रोग उत्पन्न करते है।

नेत्र रोगों के सामान्य लक्षण

स्रावाधिक्य : सामान्य स्राव नेत्रगोलक को आर्द्र रखने का कार्य करते हैं। दोष प्रकुपित होने के कारण स्राव मवाद युक्त, रक्त मिश्रित अथवा अधिक मात्रा में होता है।

लालिमा : नेत्र गोलक तथा पटल का प्रदाह होने के कारण नेत्र सिरा विस्तारित होती है और नेत्र में लालिमा उत्पन्न हो जाती है।

प्रकाशभीति : वर्त्म, वर्त्मकोश, तारका, कर्णिका आदि अवयव में त्रिधारा नाड़ी 'स्रु स्थित' होते हैं उपर्युक्त अवयव में शोथ होने के कारण प्रकाश असह्यता उत्पन्न होती है।

कर्णाग्रवर्ती लसीकाग्रंथि शोथ : अभिष्यंद, अक्षिपाक, अंजननामिका, पूयमेहन, वर्त्मपाक आदि व्याधियों में कर्णाग्रवर्ती लसीका ग्रंथि का शोथ उत्पन्न होता है।

नेत्रशूल : नेत्र के पूर्वभाग में नाडीसूत्रों की संख्या अधिक होने के कारण शोथ, पाक, प्रदाह इन अवस्थाओं में वेदना अधिक होती है।

शिरोवेदना : नेत्र में विकृति उत्पन्न होने के बाद शिरशूल, विशेषतः निकट दृष्टि या दूरदृष्टि दोष के कारण उत्पन्न होता है।

सामान्य चिकित्सा

शीत अथवा उष्ण उपचार : जब नेत्र में लालिमा युक्त शोथ होता है तब पित्त और रक्त दूषित होता है। बाकी शीत उपचार, ठंडे पानी से नेत्र धोना, नेत्र में गुलाबजल, दुग्ध, पिचु रखना। इसी उपचार से दर्द तथा वेदना में तुरंत आराम मिलता है।

उष्ण उपक्रम में रूक्ष और आर्द्र ऐसे दो प्रकार होते हैं। सूक्ष्म पोटली द्वारा स्वेदन से होता है। आर्द्र में औषधि सिद्ध त्रिफला, आदि सिद्ध जल से स्वेद करने से लाभ होता है।

- तर्पण
- पुटपाक
- अंजन
- आश्च्योतन
- परिषेक
- शिरोबस्ति
- बिडालक
- पिंडिका

ये उपचार नेत्र के दोष तथा दूष्य के अनुसार किये जाते है। इनमें "अंजन" कर्म सबसे महत्वपूर्ण है। इसीलिए अष्टांग संग्रह में "अंजन" प्रतिदिन आखों में लगाने को बताया गया है। अंजन उपक्रम से नेत्र साफ और प्रबल हो जाते हैं

बुध ग्रह और रोग

पं० काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

बुध ग्रह का प्रभाव मस्तिष्क संबंधी रोगों के संबंध में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बुध ग्रह के प्रभाव से घबराहट, अपस्मार, उन्माद एवं अन्य रोगों का जन्म होता है। सिरदर्द, अनिद्रा, आलस्य, चक्कर आना आदि भी बुध ग्रह के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। षष्ठ में बुध ग्रह होने पर इन रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

मेष– में बुध की स्थिति से शिरोरोग, चेहरे पर विकृति, अनिद्रा उत्पन्न होते हैं।

वृषभ– में बुध के होने पर गले में विकार, आवाज फंसना, बोलने में कष्ट और दांतों में पीड़ा होती है।

मिथुन– में बुध हो तो कंधों में दर्द, बाँह व हाथ में कष्ट, श्वासनलिका में विकार तथा श्वसन क्रिया में कष्ट होता है।

कर्क– में बुध की स्थिति से चिन्ता और पाचन संस्थान संबंधी विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

सिंह– में बुध हो तो हृदय में कष्ट, मेरुदण्ड में पीड़ा और धड़कन का कष्ट हो सकता है।

कन्या– में बुध के होने पर अतिसार, कृमिजन्य रोग और पेट में जलन की संभावना होती है।

तुला– में बुध हो तो मूत्र सम्बन्धी रोग और गुर्दे में विकार संभव है।

वृश्चिक– में बुध होने पर प्रजननांगों में विकार और रज संबंधी रोग संभावित हैं।

धनु– में बुध की स्थिति से जांघों में कष्ट होता है।

मकर– में बुध होने पर गठिया, सन्धिवात, कब्ज़ आदि की तकलीफ होती है।

कुम्भ– में बुध हो तो सामान्य रूप से दुर्बलता, उन्माद आदि संभव है।

मीन– में बुध होने पर कृशता, दुर्बलता, कष्ट की संभावना होती हैं।

The measure of a man .....

For any Industry to be achievement-oriented, its people must value achievement as well. At Excel, we know that our organisation can be only as good as our people. We see them as an integral part of everything we do. For all innovations must spring from people, in order to be of value to people. And the worth of every breakthrough we achieve, is the measure of the people behind it.

EXCEL–THE INNOVATORS

Chemicals for Industry & Agriculture

EXCEL INDUSTRIES LIMITED

184/87, Swami Vivekanand Road, Jogeshwari (West)

BOMBAY - 400 102

Phone : 571431-5

पुस्तक–समीक्षा

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

पुस्तक का नाम :	भारत वैद्यक
लेखक का नाम :	डा० शाम अष्टेकर
प्रकाशक का नाम :	भारतीय वैद्यक संस्था दिंडोरी, नासिक
पुस्तक का मूल्य :	रु० ४५०/–
पृष्ठ संख्या :	४४१
संस्करण :	जून, १९९२

डा० शाम अष्टेकर द्वारा रचित "भारतीय वैद्यक" मराठी भाषा की पुस्तक है। जब भारतीय वैद्यक समीक्षा के लिये प्राप्त हुई तो लगा कि यह पुस्तक कुछ विशेष है और उसका भली–भाँति अध्ययन करना आवश्यक है। यह पुस्तक मुख्यतः गाँव के स्तर पर स्थापित स्वास्थ्य केन्द्रों में नियुक्त स्वास्थ्य सेवकों के लिये है परन्तु इसके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि यह पुस्तक प्रत्येक व्यक्ति के लिये नितान्त आवश्यक है।

पुस्तक में ३३ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय शरीर शास्त्र के सम्बन्ध में है इसमें मनुष्य कैसे पैदा होता है, शरीर के घटक क्या हैं, शरीर सूत्र और गुण सूत्र का क्या महत्व है, पेशियाँ कैसे काम करती हैं और शरीर में कितनी विभिन्न संस्थायें हैं, आदि विवरण संक्षेप में दिये गये हैं। दूसरे अध्याय में शरीर के पोषण के लिये आवश्यक पदार्थों का विवरण तथा कुपोषण से होने वाले कुप्रभावों का विवरण दिया गया है। तीसरा अध्याय रोग के कारणों के सम्बन्ध में है।

अगले अध्याय में सामाजिक स्वास्थ्य का महत्व, जन–साधारण को तुरन्त स्वास्थ्य सेवा की उपलब्धता, रोग प्रतिबन्धक योजनाओं का विवरण दिया गया है।

अगले अध्याय में रोग निदान का संक्षेप में विवरण दिया गया है।

अगले अध्याय में आधुनिक औषधि विज्ञान (एलोपैथिक) के अनुसार औषधि योजना, औषधियाँ किस प्रकार काम करती हैं, उनके विभिन्न परिणाम आदि वर्णित हैं।

अगले अध्याय में आयुर्वेद और स्थानीय परम्पराओं के अनुसार पंच महाभूत, पंचकर्म, वनस्पति तथा औषधि का विवरण दिया गया है।

अगले अध्याय में होम्योपैथिक और बायोकेमिक के अनुसार रोग निदान एवं औषधि योजना संक्षेप में दी गई है।

अगले अध्यायों में क्रमशः आँख, कान, त्वचा रोग, पाचन संस्था के रोग, श्वसन संस्था के रोग, रक्ताभिसरण संस्था के रोग, रक्त संस्था के रोग संसर्गिक रोग, गर्भ एवं जनन, शिशु आरोग्य, जनसंख्या विस्फोट तथा परिवार नियोजन, सम्प्रेरक संस्थाओं के रोग, अस्थि संस्था, मस्तिष्क एवं मज्जा संस्था के रोग, मानसिक रोग, कैंसर, अन्य सामान्य कष्ट यथा सरदर्द, कमर दर्द आदि, दुर्घटना जन्य कष्ट एवं उनका प्रथमोपचार और मिलावट के सम्बन्ध में पर्याप्त विवरण दिये गये हैं।

अगले अध्याय में विशिष्ट परीक्षण यथा खून, मूत्र, मल, थूक आदि तथा एक्सरे, सोनोग्राफ स्कैन एण्डोस्कोपी, ई० सी० जी० आदि का अत्यन्त संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

अगले अध्याय में संक्षेप में विभिन्न रोगों के उपचार के लिये योगासनों का विवरण दिया गया है।

अन्तिम अध्याय व्यक्तिगत स्वास्थ्य के सम्बन्ध में है जिसमें स्वस्थ रहने के लिये सामान्य दैनिक चर्या का विवरण दिया गया है।

पुस्तक अत्यन्त सरल भाषा में है। प्रत्येक संस्थान के रोगों के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रामाणिक विवरण दिये गये हैं। प्रत्येक रोग के सम्बन्ध में तालिकायें भी दी गई हैं जिनसे रोग निदान करना अत्यन्त सुलभ हो सकता है। उदाहरणार्थः– सरदर्द अनेक रोगों में हो सकता है परन्तु यदि तालिका के अनुसार उस पर विचार किया जाय और अन्य लक्षणों से उसका मेल किया जाय तो रोग निदान सुनिश्चित करना सरल हो जाता है। प्रत्येक तालिका में रोगों को तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग ऐसे रोगों का है जो सामान्यतः औषधोपचार से दूर किये जा सकते हैं। द्वितीय भाग ऐसे रोगों का है जो गम्भीर प्रकृति के होते हैं और जो प्राथमिक उपचार के उपरान्त स्वास्थ्य सेवक द्वारा अस्पताल में संदर्भित किये जाने चाहिए और तीसरा भाग ऐसे रोगों का है जिन्हें तत्काल विशेषज्ञों की राय के लिये भेज देना चाहिये।

देश में स्वास्थ्य सेवा अभी भी बहुत कम है तथा प्रत्येक गाँव में उपलब्ध नहीं हैं। जिन केन्द्रों पर स्वास्थ्य सेवाएं कुछ अंश तक उपलब्ध हैं वहाँ भी औषधियाँ उपलब्ध नहीं हो पातीं। इसके अलावा कई बार मंहगी औषधियाँ लेने में गाँव स्तर के व्यक्ति समर्थ नहीं हो पाते। भारतीय वैद्यक में ऐसे मामलो में आयुर्वेद की कुछ दवायें बतायी गई हैं जो स्थानीय रूप से उपलब्ध हो सकती हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि आजकल ग्रामीण व्यक्ति इंजेक्शन लेने के लिये अत्यन्त आतुर रहते हैं क्योंकि उनका विश्वास होता है कि इन्जेक्शन लेने से तुरन्त रोग से मुक्त हो जायेंगे। कुछ रोग ऐसे होते हैं जिनमें इन्जेक्शन की आवश्यकता नहीं होती और यदि इन्जेक्शन दिया जाय तो वह हानिकारक होता है। इस पुस्तक में ऐसे रोगों का विवरण भी यथास्थान दिया गया है। यही स्थिति विभिन्न टॉनिकों की भी है।

पुस्तक अत्यन्त उपयोगी तथा प्रामाणिक है और केवल स्वास्थ्य सेवकों के लिये ही नहीं है बल्कि प्रत्येक घर के लिये इसकी उपयोगिता संदेहातीत है। पुस्तक की उपयोगिता इस बात से और भी बढ़ गई है कि इसमें विभिन्न संस्थानों के चित्र दिये गये हैं और उनके द्वारा शरीर के अन्तर्भूत अंगों का कार्य समझने में आसानी होगी।

पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुये यह अत्यन्त आवश्यक है कि इसका अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में किया जाय और पुस्तक प्रत्येक के लिये सुलभ कराई जाय।

पौष्टिक व्यंजन

आजकल जिस प्रकार से हर घर में सलाद खाने का प्रचलन है उसी प्रकार से सूप का सेवन भी बढ़ता जा रहा है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए उपयोगी तथा सबसे निर्दोष प्रकार का पेय है। सूप प्रायः ताजे फलों ,सब्जियों ,मेवों तथा अंड़ों से बनाया जाता है।

शीत ऋतु को एक ऐसा समय माना जाता है जबकि प्राकृतिक रूप से पके हुऐ फलों व सब्जियों का सूप विशेषरूप से लाभप्रद होता है। उससे आमाशय में कोई हानिकारक पदार्थ नहीं पहुँचता। गर्भावस्था में भी इसका सेवन बहुत लाभप्रद है। सूप, बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी के लिए समान रूप से लाभकारी है। प्रत्येक व्यक्ति के आँत की गति को सुचारु रूप से चलाने के लिए इसका सेवन आवश्यक है।

आसानी से प्राप्त फलों, सब्जियों व दालों का गरम-गरम सूप बनाना और पीना एक अद्भुत अनुभव है। यहां पर हम कुछ विशेष प्रकार के सूप बनाने की विधि दे रहें हैं।

अखरोट का सूप

सामग्री : छह अखरोट के गूदे, चार-पांच छिले हुए लहसुन के टुकड़े, एक चाय का चम्मच क्रीम, थोड़ा सा नमक व पिसी काली मिर्च, स्वाद के अनुसार थोड़ा सा नींबू का रस, सजाने के लिए महीन कटा हुआ प्याज।

विधि : सबसे पहले अखरोट को भली भांति पीस कर पेस्ट बना लें। लहसुन का भी महीन पेस्ट बना लीजिए। धीरे-धीरे इसमें क्रीम भी मिला दें अब नमक डालने के बाद इसको एक वर्तन में डालकर आग पर रख कर उबाल लें। उबल जाने के बाद इसमें महीन काली मिर्च का पाउडर, थोड़ा सा नींबू का रस डाल दीजिए। लोगों को पीने के लिए देने से पहले बारीक कटे हुए हरे प्याज के टुकड़े ऊपर से सजा दें।

मक्की का सूप

सामग्री : ३ सफेद दानेदार भुट्टे अथवा १५० ग्राम मक्की के दाने, २ बड़े चम्मच आटा, २५ ग्राम जमा हुआ मक्खन, उबाली हुई सब्जियों का पानी, १/४ चाय का चम्मच नमक, हरा धनिया छोटा कटा हुआ, पिसी काली मिर्च पाउडर इत्यादि ऊपर से डालने के लिए।

विधि : भुट्टे छीलकर दाने अलग कर लें और एक बर्तन में धोकर रख लें। आटा, नमक व मक्खन सावधानी से मिला लें। समस्त सामग्री को मिलाकर पेस्ट बना लें। अब मक्खन को एक बर्तन में डालकर इतना गर्म कर लें कि उसमें उबाल आने लगे। मक्की के दाने को डालकर हल्का तल लें। बने हुए पेस्ट को चम्मच-चम्मच करके इसमें मिला दें। इसमें सब्जियों का पानी भी डाल दें और जीरे की छौंक के साथ पकने दें। अब ऊपर से बारीक कटी हरी धनिया व काली मिर्च पाउडर मिलाकर लोगों को पीने के लिए दें।

काले चने व सेब का सूप

सामग्री : ५० ग्राम काले चने, १ बड़ा लाल सेब, २० ग्राम पिसे बादाम का पेस्ट, २ लाल टमाटर, २५ ग्राम बारीक कटी लौकी, १ छोटा चम्मच नमक, १/२ छोटा चम्मच काली मिर्च, ४ लौंग, १ बड़ा चम्मच मक्खन।

विधि : काले चने को धोकर रात भर पानी में भिगो दें। सुबह उसमें नमक डालकर उबाल लें। गलने के बाद चलनी के द्वारा छान लें। सेब, टमाटर व लौकी काट लें। कुकर में मक्खन डालें व लौंग को अच्छी तरह पका लीजिए। सेब व सब्जियां डालें तथा छना पानी डालकर कुकर बंद कर ५ मिनट तक पकाएं तथा फिर धीमी आंच पर ५ मिनट तक रख कर पका लीजिए। उबलते हुए सूप में बादाम पेस्ट डाल दें तथा ५ मिनट तक उबाल कर गरमागरम जायकेदार पौष्टिकता से भरपूर सूप पिएं और पिलाएं।

शाही वेजीटेबल सूप

सामग्री : १/२ प्याला पनीर मसला हुआ, २ प्याले छोटे टुकड़ों में कटी लौकी, २ प्याले कटे टमाटर, १ प्याला कटी गाजर, १ प्याला बारीक कटी पत्तागोभी, १ छोटा प्याज, २ बड़े चम्मच कार्नफ्लोर, १ छोटा चम्मच सिरका, ३/४ छोटे चम्मच नमक, १ बड़ा चम्मच मक्खन, २ लौंग, १/२ छोटा चम्मच काली मिर्च पाउडर।

विधि : कुकर में मक्खन गरम करें व लौंग पर चटकाएं, टमाटर, लौकी, प्याज, गाजर व ६ प्याले पानी डालें तथा नमक डालकर सीटी लगाकर आठ-दस मिनट तक पकाएं। इसके बाद छान लें। रस को उबलने रखें व उसमें पत्तागोभी तथा पनीर डालकर पाँच मिनट तक पकाएं। मक्के के आटे को ३/४ प्याले पानी में घोल कर सूप में मिलाकर उबाल लें और नमक, काली मिर्च पाउडर बुरक कर शाही सूप पेश करें।

प्रिय पाठक,

"जीवनीय" का प्रकाशन लोक स्वास्थ्य परम्परा संवर्धन समिति (लोस्वापसंस) के सदस्य संगठनों एवं कार्यकर्ताओं के सक्रिय सहयोग द्वारा भारत की लुप्तप्राय होती स्वास्थ्य की बहुमूल्य स्थानिक परम्पराओं के विकास के लिए राष्ट्रीय स्तर पर शुरू किए गए आंदोलन का भाग है।पाठकों से अनुरोध है कि लोस्वापसंस तथा जीवनीय पत्रिका के सक्रिय सदस्य बन कर इस आंदोलन में अपना सहयोग दें तथा अपनी वाटिकाओं में औषधीय पौधे लगाकर व उनका प्रयोग करके स्वास्थ्य के सामान्य विकारों को दूर कर स्वास्थ्य लाभ लें।

सम्पादक मंडल

मानवोदय, लखनऊ

मानवोदय एक सहायक संस्था है जो ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को उनकी समस्याओं के स्थानीय समाधान ढूंढने में मदद करती है। करीब १०० गांवों में इसके ८ वर्ष के अनुभव से यह संकेत मिलता है कि लोगों को उनकी समस्याओं के समाधान के लिये संगठित किया जा सकता है। सक्षम नेतृत्व और कुछ प्रकार की संस्थागत सहायता इस कार्य के दो आवश्यक तत्व हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, सिंचाई, सामाजिक सुधार, स्थानीय संघर्षों के समाधान, ऋण और आय बढ़ाने के क्षेत्रों में वैकल्पिक विकास के लिये मानवोदय ने ग्रामीण स्तर के कई संगठनों जैसे युवक मंगल दल, ऋण और जमा संगठन, ग्रामीण शिक्षा समितियों और दूसरे ग्रामीण संगठनों के साथ मिलकर काम किया है। संस्था का अनुभव है कि उनके विकास कार्यक्रमों में लोगों की सहभागिता यद्यपि बहुत आसान नहीं पर निश्चित रूप से संभव है। ऐसी कोई भी प्रक्रिया गरीब और शोषित व्यक्ति को शक्ति देने की भी प्रक्रिया है जिसमें समय लगता है।

संस्था प्रारम्भ में स्थानीय समूह के कार्यकर्ताओं की पहचान करती है फिर उन्हें अपनी सहायता आप करने के लिये सहभागी शिक्षण विधि से गहन प्रशिक्षण देती है। इसके द्वारा वह उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन का प्रयास और विभिन्न विषयों पर सूचनाओं का आदान प्रदान करती है। मानवोदय ४० ग्रामीण विद्यालयों के साथ भी काम करती है इसमें से कई मानवोदय द्वारा शिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्रारम्भ किये गये हैं।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में मानवोदय, जल सप्लाई व्यवस्था में सुधार और सफाई पर ध्यान केन्द्रित करके रोगों से बचाव के क्षेत्र में कार्य कर रही है। उदाहरणार्थ संस्था का यह विश्वास है कि उसके क्षेत्र में इंडिया मार्क- II हैंडपंप लगाये जाने के बावजूद कुएँ पेय जल आपूर्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत बने रहेंगे। अतः यह महत्वपूर्ण है कि ग्रामीणों को उनके कुएँ साफ रखने के लिये संगठित किया जाय। इसकी दो आवश्यक गतिविधियां हैं-

- **कुओं की नियमित सफाई-** यह केवल सामूहिक प्रयास से ही सम्भव है।
- **कुएं के जल का क्लोरीनीकरण-** इसके लिये कुएं में जल की मात्रा ज्ञात करना और उसमें डाले जाने वाले ब्लीचिंग पाउडर की मात्रा ज्ञात करनी चाहिये। मानवोदय ने बहुत से ग्रामीणों को इसकी शिक्षा दी है और इसके लिये एक पुस्तिका छापी है जिससे बहुत से गांवों को लाभ पहुंचा है।

मानवोदय द्वारा सीतापुर जिले के एक दर्जन से अधिक गाँवों के कुंओं का परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि उनमें से किसी भी कुएं का पानी पीने योग्य नहीं था। अतः संस्था यह विश्वास करती है कि स्वास्थ्य प्रतिरूपों के विकास में पानी के परम्परागत स्रोतों की रक्षा शामिल की जानी चाहिए। ग्रामीण स्तर पर ध्यान देने योग्य बात जल निकासी की सही व्यवस्था भी है जिसके लिये सोख्ता गड्ढा की तकनीक अब स्थापित हो चुकी है। ग्रामीण सोख्ते गड्ढों का निर्माण बिना किसी खर्च के कर सकते हैं। इससे ठहरे हुऐ पानी के गंदे जल से भरे हुऐ गड्ढों से प्रभावित वातावरण भी स्वच्छ होता है। संस्था द्वारा किये गये प्रायोगिक प्रदर्शनों और उनके द्वारा इस विषय पर बनाई गई वीडियो फिल्म ने बहुत से ग्रामीणों को यह तकनीक अपनाने में मदद की है। मानवोदय के दिशा निर्देश में ग्रामीण स्कूलों के बच्चों ने भी सोख्ता गड्ढों का निर्माण किया है।

संस्था यह अनुभव करती है कि वनस्पतियों और परम्परागत औषधियों पर आधारित वैकल्पिक प्रतिरूपों का संगठन महिलाओं द्वारा किया जाना चाहिए क्योंकि उनके पास इसके लिए समय होता है तथा इस क्षेत्र में कार्य करने की इच्छा और आवश्यकता होती है। पशु स्वास्थ्य के क्षेत्र में बहुत कार्य करने की आवश्यकता है। हमारे पशु स्वास्थ्य शिक्षण कार्यक्रम के प्रतिभागियों ने यह अनुभव किया है कि परम्परागत पशु स्वास्थ्य परम्पराओं को बिना किसी छान-बीन के नकारा जा रहा है। प्रायोगिक तौर पर तैयार आयुर्वेदिक पशु औषधियों की ग्रामीण घुमन्तू डाक्टरों को दिये जाने के बहुत लाभदायक परिणाम निकले हैं।

टहलिए, दर्द भगाइये

यदि आपके घुटनों में गठिये के कारण दर्द रहता है और डाक्टर से आप टहलने के बारे में पूछते हैं तो उसके दो उत्तर हो सकते हैं। एक-जरूर टहलिए, इससे आपका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा और दर्द भी कम होगा। दो-बिल्कुल मत टहलिए, दर्द बढ़ जायेगा। इस विषय पर एक गहन और विस्तृत अध्ययन अब हुआ है न्यूयार्क स्थित 'हास्पिटल फार स्पेशल सर्जरी' में। इसमें घुटने की तकलीफ (गठिया जनित) से ग्रस्त १०२ लोगों को विशेषज्ञों की देखरेख में टहलने के विशेष कार्यक्रमों में शामिल किया गया। उन्हें टहलने के सही तरीके समझाये गये। यह भी बताया गया कि टहलने के लिए उन्हें किस तरह के जूते और कपड़े पहनने चाहिएं। यह ८ हफ्तों का कार्यक्रम पूरा होते-होते उनकी न केवल टहलने की क्षमता में वृद्धि हुई बल्कि उनके घुटने का दर्द भी कम हो गया। यह भी देखा गया कि उसके बाद उनकी दवा की जरूरत भी कम हो गयी। अध्ययन दल के प्रमुख डा० हेंस कोटेल का कहना है कि सही तरीकों और सही जूतों के साथ यदि रोगी हफ्ते में तीन दिन आधा घण्टा भी टहल ले तो उसका दर्द कुछ ही दिनों में कम पड़ने लगता है।

जीवनीय विज्ञान पहेली

हमारे पिछले अंक में प्रकाशित पहेली पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं से हमारा उत्साह बढ़ा है और हम इसको और अधिक रोचक बनाने का संकल्प करते हुए प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम पुरस्कार : दो वर्ष तक निःशुल्क जीवनीय।

द्वितीय पुरस्कार : एक वर्ष तक नि :शुल्क जीवनीय।

नियम और शर्तें

- पहेली का हल भेजने का कोई शुल्क नहीं देना होगा।
- पहेली का हल कोई भी पाठक भेज सकता है।
- पहेली का हल साधारण डाक से भेजना होगा।
- एक व्यक्ति को एक ही पुरस्कार मिल सकेगा।
- सर्वशुद्ध हल न आने पर पुरस्कार देने या न देने का अधिकार सम्पादक को होगा।
- सम्पादक का निर्णय हर स्थिति में मान्य होगा। किसी तरह की शिकायत सम्पादक से ही की जा सकेगी।
- किसी भी तरह का कानूनी दावा, कहीं भी दायर नहीं किया जा सकेगा।

यहाँ छपे पृष्ठ को भरकर सामान्य डाक द्वारा भेजी गयी पूर्ति ही स्वीकार्य होगा।

कृपया सही का निशान (√) उन वाक्यों पर लगायें जो सही हों। जहाँ विवरण देने के लिये कहा गया है, वहाँ विवरण भर दें।

१. वर्षा ऋतु में

(क) ..... दोष का प्रकोप होता है।

(ख) वनस्पतियों के पाक में ..... भाव रहता है।

(ग) ऐसी वनस्पतियों के सेवन से .... दोष का संचय होता है।

२. अभिष्यन्दी द्रव्यों के नाम लिखिये:-

(क) ----------

(ख) ----------

३. अतिसार के पूर्व लक्षण क्या हैं?

(क) ----------

(ख) ----------

(ग) ----------

(घ) ----------

(ङ) ----------

४. अतिसार कितने प्रकार का होता है उनके नाम लिखिए?

(क) ----------

(ख) ----------

(ग) ----------

(घ) ----------

(ङ) ----------

(च) ----------

५. आयुर्वेद में वर्णित लंघन के दस प्रकारों के नाम लिखिए:-

(क) ----------

(ख) ----------

(ग) ----------

(घ) ----------

(ङ) ----------

(च) ----------

(छ) ----------

(ज) ----------

(झ) ----------

(ट) ----------

६. किन लोगों के लिए लंघन वर्जित है?

(क) ----------

(ख) ----------

(ग) ----------

(घ) ----------

७. प्लीहा का औसत भार क्या होता है?

----

८. क्षुद्रान्त्र की औसत लम्बाई क्या है?

----

९. नाभि हटने की सरल परीक्षा कैसे की जाती है?

----

१०. दन्तहर्ष का क्या तात्पर्य है?

स्वस्थ एवं निरोगी जीवन के लिए

लोक स्वास्थ्य की द्वैमासिक पत्रिका

जीवनीय

के नियमित पाठक बनें

पता : ई-III/२४९, सेक्टर एच,

अलीगंज लखनऊ- २२६०२०

अनुसंधान समाचार

दिमाग के टॉनिक का सच

विटामिन तथा खनिज लवण की अतिरिक्त मात्रा के सेवन से जैविक बुद्धिमत्ता या दिमाग की तार्किक क्षमता पर कोई असर नहीं पड़ता। यह निष्कर्ष इंग्लैण्ड के एक अनुसंधान दल ने एक ताजा अध्ययन से निकाला है। यह निष्कर्ष उन आम मान्यताओं को झूठा ठहराता है जो दिमागी टॉनिक के निर्माता अपने आक्रामक बिक्री कार्यक्रम तथा विज्ञापनों के माध्यम से फैलाते हैं। इन विज्ञापनों का मकसद यही दिखाना होता है कि इन दिमागी टॉनिकों से स्कूली बच्चों की अक्ल बढ़ती है।

वास्तव में बाजार में दिमागी टॉनिकों की बाढ़ तब आई, जब बी० बी० सी० पर डॉ० बेन्टन तथा डॉ० रॉबर्टस के शोध कार्य से संबधित कार्यक्रम का प्रसारण हुआ। यह बात जनवरी १९८८ की है। इन शोधकर्ताओं का निष्कर्ष था कि स्कूली बच्चों को ८ माह तक विटामिन/खनिज की अतिरिक्त खुराक देने पर उनकी बुद्धिमत्ता में उल्लेखनीय सुधार हुआ। यह बुद्धिमत्ता गणित के सवाल हल करने की क्षमता में है जिसमें शब्द भंडार की जरूरत नहीं पड़ती। इस अध्ययन में १२–१३ वर्ष की उम्र के ९० स्कूली बच्चों को शामिल किया गया था। उनके तीन समूह बनाए गए थे। एक समूह को विटामिन व खनिज लवण की पूरक खुराक दी गई। दूसरे को प्लैसीबो यानी विटामिन व खनिज के नाम पर गैर–औषधि पदार्थ दिए गए। तीसरे वर्ग को कोई औषधि नहीं दी गई। परीक्षण से पूर्व के बुद्धिमत्ता आँकड़ों की तुलना परीक्षण बाद के आँकड़ों से की गई। ज्ञात हुआ कि प्लैसीबो का सेवन कर रहे बच्चों की तुलना में विटामिन तथा खनिज लवणों का सेवन कर रहे बच्चों की बुद्धिमत्ता में कहीं ज्यादा सुधार हुआ। डा० बेन्टन व रॉबर्टस के अध्ययन की काफी आलोचना भी हुई क्योंकि इसमें नियोजन, क्रियान्वयन तथा आँकड़ों की व्याख्या संबंधी कई खामियाँ थीं।

इस प्रयोग को किंग्स् कॉलेज के शोधकर्ताओं ने दोहराया। उन्होने ११–१२ साल के १५४ बच्चों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि विटामिन व लवणों की खूराक पा रहे बच्चों की बुद्धिमत्ता में कोई सुधार नहीं हुआ। इसके बाद डुण्डी विश्वविद्यालय के शोध दल ने तय किया कि वे डा० बेन्टन व रॉबर्टस के अध्ययन को यथासंभव दोहराने की कोशिश करेंगे। इस अध्ययन का निष्कर्ष है, "विटामिन व खनिज लवणों की पूरक खुराक से स्कूली बच्चों की तार्किक क्षमता पर कोई असर नहीं पड़ता।"

यह अध्ययन स्कूली बच्चों पर करने का कारण यह है कि अभाषापरक बुद्धिमत्ता १८–२१ वर्ष की उम्र में अपने चरम पर पहुंच जाती है। इसके विपरीत भाषापरक बुद्धिमत्ता जीवन भर बढ़ सकती है। भारत की शिक्षा प्रणाली भाषापरक बुद्धिमत्ता पर अतिशय जोर देती है। गौरतलब है कि इस बुद्धिमत्ता के मामले में शोधकर्ता एकमत हैं कि इस पर विटामिन व खनिज लवणों की पूरक खुराक का कोई असर नहीं पड़ता। इस वैज्ञानिक राय के विपरीत भारतीय औषधि निर्माता दावा करते हैं कि उनके टॉनिक परीक्षा में बच्चों का प्रदर्शन सुधारने में मदद करते हैं। यह दावा वैज्ञानिक कसौटियों पर तो खरा नहीं उतरता।

(स्रोत फीचर्स)

हृदय रोग से बचने के लिए सब्जियां खाइये

अमेरिकी शोधकर्ताओं ने रिपोर्ट दी है कि भोजन में वसा या चर्बी कम करने और फल सब्जियों की मात्रा बढ़ाने से हृदय रोग, और कैंसर तक से बचा जा सकता है। राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद ने बताया है कि एक निश्चित स्तर तक वसा और कोलेस्ट्रोल की मात्रा घटाने से धमनी हृदय रोग का खतरा २० प्रतिशत कम किया जा सकता है। रिपोर्ट में विशेष प्रकार के सादे भोजन की सिफारिश की गई है। जिन देशों में ऐसा खान–पान है वहां कैंसर का खतरा भी लगभग आधा है। रिपोर्ट में हिदायत दी गई है कि औसत स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन अपने शरीर के वजन के हिसाब से एक किलोग्राम वजन के पीछे १.६ ग्राम से अधिक प्रोटीन नहीं लेना चाहिए। मांस, मछली और दूध में पाए जाने वाले प्रोटीन की अधिकाई से कैंसर और हृदय रोग हो सकते हैं।

(लविन्द्र टाइम्स, २४ मई १९९३)

मोतियाबिंद में मददगार है एस्प्रिन

एस्प्रिन एक ऐसी दवा है, जो मेडिकल स्टोर के अलावा आम दुकानों पर भी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। बुनियादी तौर पर यह दवा हल्का दर्द और सूजन में आराम देती है, लेकिन इसका उपयोग आमतौर पर सर्दी, जुकाम और बुखार में भी बिना चिकित्सकों की सलाह के किया जाता है।

ब्रिटेन के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की जैवविज्ञान प्रयोगशाला में इस पर वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया। परीक्षण के बाद वैज्ञानिकों ने कहा कि विश्व में अंधेपन के सबसे बड़े कारण मोतियाबिन्द को रोकने में एस्प्रिन काफी मददगार है। अध्ययनकर्ताओं के अनुसार रक्त में ग्लूकोज़ की अधिक मात्रा से मोतियाबिन्द होने का खतरा काफी होता है, जिसे रोकने में एस्प्रिन की अति महत्वपूर्ण भूमिका है।

अधिक मात्रा में प्रोस्टैग्लैंडिन के बनने से (जो तकरीबन हमारे शरीर के हर ऊतक से बनता है) आँखों की रक्त वाहिकाओं को होने वाली क्षति की भरपाई करने में इससे मदद मिल सकती है। यह दवा रक्त में थक्का बनने की प्रक्रिया, जो हृदयाघात का कारण है, को भी रोकने में प्रभावी है।

(स्वतन्त्र भारत, १३ अक्टूबर १९९३)

बछड़ा या बछिया अब इच्छानुसार

गर्भस्थ भ्रूण के लिंग के बारे में पता लगा लेने वाली तकनीक तो पहले से ही अस्तित्व में है लेकिन अब बात केवल 'बछड़ा होगा या बछिया'तक सीमित नहीं है। अब वैज्ञानिक 'जो चाहोगे वही मिलेगा' कहने की स्थिति में पहुंच गये हैं। कम से कम गायों के संबंध में तो वे ऐसा दावा कर ही सकते हैं। पूर्व निर्धारित लिंग वाले बछड़ों और बछियों का जन्म हो चुका है। इस असाधारण सफलता से पशुपालन उद्योग के अर्थशास्त्र और प्रबंधन पर क्रांतिकारी असर होगा क्योंकि अब पशुपालक अपनी इच्छानुसार नर या मादा बच्चों का उत्पादन कर सकेंगे।

जन्म से पहले ही भ्रूण के लिंग का पता लगा लेने वाली तकनीकी तो कुछ समय पहले से ही प्रचलन में हैं लेकिन अभी यह संभव नहीं था कि गर्भाधान के समय ही भ्रूण के लिंग का निर्धारण कर दिया जाए। कैम्ब्रिज (ब्रिटेन) की 'मास्टर काफ लिमिटेड' ने यह संभव कर दिखाया है। 'मास्टर काफ लि०' की इस सफलता में कैम्ब्रिज इन्स्टीच्यूट आफ एनिमल फिजियोलाजी एण्ड जेनेटिक रिसर्च' के (ए० एफ० आर० सी०) और अमरीका के कृषि विभाग का भी सहयोग रहा है।

'मास्टर काफ लि०' की तकनीक 'एक्स' और 'वाई' क्रोमोजोम वाले शुक्राणुओं को पहचानने और अलग करने की विधि पर आधारित है। 'एक्स' क्रोमोजोम वाले शुक्राणु मादा तथा 'वाई' क्रोमोजोम वाले शुक्राणु नर भ्रूण के विकास के लिए उत्तरदायी हैं। वांछित लिंग वाला बच्चा प्राप्त करने के लिए अंडे को तदनुरूप शुक्राणु से निषेचित किया जाता है निषेचन की क्रिया गर्भाशय के बाहर ही सम्पन्न की जाती है। निषेचन के पश्चात भ्रूण को मादा के गर्भाशय में स्थापित कर दिया जाता है।

नयी तकनीक का उपयोग भ्रूण स्थानान्तरण के माध्यम से ही किया जा सकता है क्योंकि अत्यंत त्वरित गति से अल्प समय में पहचाने और बिलगाये जाने वाले शुक्राणुओं की संख्या इतनी कम होती है कि वे कृत्रिम गर्भाधान की सामान्य प्रक्रिया के लिए पर्याप्त नहीं होते। 'मास्टर काफ लि०' ने नयी तकनीक की सहायता से तीन बछड़ों और तीन बछियों का उत्पादन किया है।

(स्वतन्त्र भारत, जून '९३)

कैंसर रोग

१९९० में कम से कम दस लाख अमेरिकी नागरिक कैंसर से पीड़ित हुए। कम से कम पांच लाख तो कैंसर की वजह से मौत के शिकार हुए। आज अमेरिका, इंग्लैंड तथा अन्य पश्चिमी देशों में हर ३ में से १ व्यक्ति कैंसरग्रस्त है और हर चार में से एक व्यक्ति की मौत कैंसर की वजह से होती है। १९५० में ये दरें क्रमशः ४ में से १ तथा ५ में से १ थीं। '५० के दशक के बाद से अमेरिका में हर तरह के कैंसर की दर ४३.५ प्रतिशत बढ़ी है। कुछ खास प्रकार के कैंसरों में तो भयानक वृद्धि हुई है। १९५० से १९८८ के दरम्यान फेफड़ों के कैंसर में २६३%.प्रोस्टेट (पौरुष ग्रंथि) कैंसर में १००% तथा महिलाओं के स्तन कैंसर एवं पुरुषों की आँत के कैंसर में ६०% वृद्धि हुई। सिर्फ आमाशय तथा गर्भाशय-मुख के कैंसर में कमी आई है। कैंसर की वजह से होने वाली मृत्यु दर में भी ५.५% की वृद्धि हुई है।

७५% कैंसर, ५५ वर्ष से ज्यादा उम्र वाले व्यक्तियों को होते हैं। कुछ कैंसर जैसे ल्यूकेमिया, मस्तिष्क कैंसर और वृषण कैंसर युवाओं को ज्यादा होते हैं। इनकी दर भी तेजी से बढ़ रही हैं। कैंसर की दर गरीब लोगों में ज्यादा है। जैसे अश्वेत लोगों में कैंसर प्रकोप की दर श्वेत लोगों की बनिस्बत १०% ज्यादा है। इसी प्रकार कारखानों, खदानों, रासायनिक इकाइयों तथा परमाणु इकाइयों के इर्द गिर्द रहने वालों पर भी कैंसर का प्रकोप औसत से ज्यादा होता है। यही हाल उन कामगारों का भी है जो ऐसी औद्योगिक इकाइयों में काम करते हैं। यहां तक कि ऐसे कामगारों के बच्चों में भी कैंसर (खासकर ल्यूकेमिया) का प्रकोप ज्यादा देखा गया है।

(स्रोत, जून '९३)

भेड़ों में इन्सानी गुण

एडिनबरा के वैज्ञानिकों ने भेड़ों के गुणसूत्रों में एक मानवीय जीन प्रविष्ट कराने में सफलता प्राप्त की है। इन्सानों में यह जीन अल्फा-१ ऐण्टीट्रिप्सीन नामक प्रोटीन पैदा करने का काम करता है। यह प्रोटीन फेफड़ों की एक बीमारी आनुवंशिक एम्फीसीमा के उपचार में काम आता है। फार्मास्यूटिकल प्रोटीन्स नामक कम्पनी के वैज्ञानिकों ने इस तरह की भेड़ें सबसे पहले तीन साल पहले 'निर्मित' की थीं। इनमें से ४ मादा भेड़ें थीं। ये प्रति लीटर दूध में करीब ३५ ग्राम ऐण्टीट्रिप्सीन का उत्पादन करती हैं। इस प्रोटीन का अब इन्सानी परीक्षण करने की तैयारियां चल रही हैं। परन्तु उससे पूर्व शोधन की बढ़िया विधियां तैयार करना जरूरी है।

यह करिश्मा जिनेटिक इंजीनियरिंग की विधि से किया गया है। जिनेटिक इंजीनियरिंग एक आधुनिक विज्ञान है जिसमें एक प्राणी के जीन दूसरे प्राणी में स्थानांतरित करके उस दूसरे प्राणी के शरीर में उस जीन को सक्रिय करवाया जाता है। तब उस दूसरे प्राणी के शरीर में वही पदार्थ बनने लगता है जो उक्त जीन पहले प्राणी के शरीर में बनता था। इस प्रकार के प्रयोगों को लेकर कई तरह के नैतिकता संबंधी सवाल उठ खड़े हुए हैं। सबसे बड़ा सवाल तो यही उठता है कि क्या भेड़ का अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व है? क्योंकि कुदरती भेड़ तो ऐण्टीट्रिप्सीन नहीं बनाती न ही उसे ऐसा करने की जरुरत है। मात्र मानव के उपयोग के लिए भेड़ के गुणों में इस ढंग के परिवर्तन करना क्या उचित है? क्या अब मानव ने नई प्रजातियाँ गढ़ने तथा जैविक विकास की जिम्मेदारी भी अपने हाथ में ले ली है? इसके अलावा कई व्यावहारिक सवाल भी हैं। मसलन क्या जिनेटिक इंजीनियरिंग से उत्पन्न भेड़ें किन्हीं अन्य गुणों में भी परिवर्तन की वाहक बनेंगी? क्या यह वांछनीय है? बहरहाल वैज्ञानिक अपनी इन उपलब्धियों से फिलहाल तो खुश हैं।

(स्रोत,अगस्त'९३)

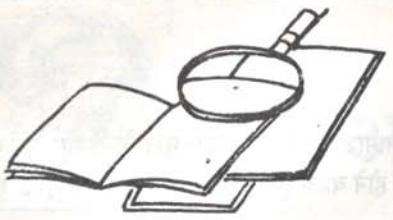

पत्र पत्रिकाओं से

पारम्परिक चिकित्सा में शोध पर बल

राष्ट्रपति डा० शंकरदयाल शर्मा के अनुसार विश्व समुदाय को विकासशील देशों के लोगों स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसी संस्थाओं को पारम्परिक चिकित्सा के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देकर चिकित्सा सुविधाओं को आम आदमी की पहुंच में लाने का प्रयास करना चाहिए। राष्ट्रपति ने चिकित्सा क्षेत्र में पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों की उपलब्धियों और उपादेयता का भी उल्लेख किया। इससे पहले विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्यक्ष डॉ० हिरोशी नाकाजीमा ने राष्ट्रपति को संगठन की गतिविधियों और क्षेत्रीय समिति के अधिवेशन में हुए विचार-विमर्श से अवगत कराया।

(नवभारत टाइम्स, सितम्बर '९३)

प्रोस्टेट का इलाज अब लेज़र से

बढ़ी हुई प्रोस्टेट ग्रंथियों के इलाज के लिए विश्व में पहली बार लेजर तकनीक का सहारा लिया गया है। पचपन वर्ष की उम्र के बाद अक्सर लोग इस विकार से पीड़ित हो जाते हैं। मेलबोर्न के सेंट विन्सेंट अस्पताल के डाक्टरों द्वारा विकसित इस लेज़र आपरेशन तकनीक में, एण्डोस्कोप को मूत्र द्वार से शरीर के भीतर पहुंचा दिया जाता है। फिर इसके द्वारा स्वर्ण मिश्रित धातु की नोक वाले फाइबर को प्रोस्टेट के निकट पहुंचाया जाता है। मूत्राशय के आधार के निकट लेजर ऊर्जा का प्रयोग करते हुए अनचाहे ऊतकों को साफ कर दिया जाता है। क़ालान्तर में ये व्यर्थ ऊतक बाहर निकाल दिये जाते हैं। लेजर तकनीक परम्परागत ऑपरेशन तकनीक से बेहतर है क्योंकि इसमें मरीज को बेहोश करने की आवश्यकता नहीं होती। सिर्फ स्थानीय निश्चेतक की सहायता से मात्र २० मिनट में यह पूरा आपरेशन किया जा सकता है। घाव खुला न होने के कारण किसी संक्रमण का खतरा भी नहीं होता।

(विज्ञान प्रगति, अक्टूबर १९९३)

जड़ी-बूटियों को बचाने की परियोजना

यह परियोजना केरल की कोट्टक्कल आयुर्वेदशाला द्वारा शुरू की जाएगी तथा इसमें कनाडा का अंतरराष्ट्रीय विकास अनुसंधान केन्द्र (आई० डी० आर० सी०) सहयोग करेगा। इस परियोजना के तहत जंगलों से औषधीय गुणों वाली मूल्यवान और दुर्लभ वनस्पतियों को जमा किया जाएगा तथा इन्हें विशेष उद्यानों में उगाया जाएगा।

औषधि गुणों वाली वनस्पतियों का संरक्षण करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि इस शताब्दी के अंत तक विश्व की आबादी का ८० प्रतिशत भाग स्वास्थ्य और चिकित्सा की जरूरतों के लिए वनस्पतियों से तैयार औषधियों पर निर्भर रहेगा। रसायनों से निर्मित दवाइयों के दुष्प्रभावों के कारण पूरे विश्व में इन दवाइयों के विरुद्ध जनमत तैयार हो रहा है, जबकि दूसरी ओर पाम्परिक चिकित्सा प्रणाली दिनों-दिन अधिक लोकप्रिय होती जा रही है। एक तरफ इन औषधीय वनस्पतियों की मांग निरंतर बढ़ रही है, दूसरी तरफ वनों के विनाश के कारण ये वनस्पतियां लुप्त होती जा रही हैं।

आई० डी० आर० सी० का कहना है कि औषधीय गुणों वाली वनस्पतियों को संरक्षित रखने तथा इन्हें आसानी से उपलब्ध कराने के लिए तत्काल कदम उठाने की जरुरत है। भारत में अनुमानतः ५० करोड़ लोग अपनी स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों के लिए वनस्पति औषधियों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्भर रहते हैं। वनस्पतियों का सामाजिक-आर्थिक महत्व भी है, क्योंकि आदिवासी और स्थानीय आबादी में से ३० लाख दो हजार लोग इस क्षेत्र में रोजगाररत हैं।

भारत में सर्वाधिक प्रचलित स्वदेशी चिकित्सा प्रणाली 'आयुर्वेद' पर करीब ३० करोड़ लोग अपनी स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों के लिए पूर्णतः निर्भर रहते हैं, जबकि २० करोड़ लोग आंशिक रूप से निर्भर रहते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के तहत करीब दो हजार औषधियां विभिन्न वनस्पतियों से बनायी जाती हैं। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक देश भर में करीब ४२ सौ मान्यता प्राप्त आयुर्वेदशालाएं और दवाखाने हैं। बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों ने भी औषधीय वनस्पतियों की मांग बढ़ा दी, जिसके कारण भारत के औषधीय वनस्पतियों के संसाधनों पर दबाब बढ़ गया है। यही वजह है कि इन वनस्पतियों के निर्यात में भारी वृद्धि हुई है। वर्ष १९८१-८२ में देश से तीस करोड़ रुपये की औषधीय वनस्पतियों का निर्यात हुआ था, जबकि वर्ष १९९०-९१ में २१.५ करोड़ रुपये की वनस्पतियों का निर्यात हुआ।

(राष्ट्रीय सहारा, जून १९९३)

मछली से दमे का इलाज!

मछली के द्वारा दमे के रोगियों का उपचार करते हैं, हैदराबाद के श्री बाथिनी गौड़। परम्परा से प्राप्त इस चिकित्सा का लाभ आज अनेक रोगी उठा रहे हैं। वे हर साल वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में इस चिकित्सा की शुरुआत करते हैं। इसमें 'मुरेल' नामक मछली का औषधि के तौर पर उपयोग किया जाता है। उनके मत में यह मछली निगलने के बाद, मानव की पाचन प्रणाली साफ होती है, जिससे दमे की 'कार्ती' नामक औषधि अपना उचित काम करती है। गौड़ परिवार के सभी सदस्य इस चिकित्सा से जुड़े हैं।

(आरोग्य संजीवनी, १९९३)

मधुसंचय

मलेरिया की वापसी और रोकथाम

मलेरिया एक बार फिर अपनी पूरी शक्ति और आक्रामकता के साथ लौट आया है। अनुमान है कि इस साल विश्व भर में तीस करोड़ से अधिक लोग मलेरिया से प्रभावित होंगे तथा इनमें से दस बीस लाख लोग मरेंगे। भारत, चीन, ब्राजील और कई अफ्रीकी देशों सहित करीब सौ देशों की यह गंभीर समस्या है। प्रतिवर्ष दस करोड़ मलेरिया रोगी अस्पतालों में भर्ती होते हैं। पांच साल से कम उम्र के बच्चे तथा गर्भवती महिलाएं मलेरिया से सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। स्तनपान करने वाले बच्चों में मलेरिया परजीवी का प्रतिरोध करने की क्षमता अधिक होती है। बोतलों से दूध पीने वाले बच्चे रोग प्रतिरोध करने की क्षमता खो बैठते हैं।

मच्छर मारने वाले डी० डी० टी० जैसे कीटनाशकों और मलेरिया की दवा क्लोरोक्विन के प्रति मच्छरों में प्रतिरोध विकसित होने के कारण मलेरिया फिर व्याप्त है।दो दशक पहले मलेरिया सामान्य बीमारी थी, परन्तु अब यह महामारी का रूप धारण करने जा रहा है। अफ्रीका के कई देशों में तो यह महामारी बन चुका है। दो दशक पहले अमरीका, यूरोप तथा एशिया के कुछ हिस्सों में मलेरिया परजीवी को स्थानांतरित करने वाले मच्छरों को डी० डी० टी० का व्यापक पैमाने पर छिड़काव कर नष्ट कर दिया गया। भारत १९६० के पूर्व तक मलेरिया से लगभग मुक्त था। डी० डी० टी० का बड़े पैमाने पर छिड़काव करके इस रोग पर काबू पा लिया गया था, परन्तु अब यह एक स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्या बन गया है। अफ्रीका को छोड़कर बाकी देशों में से ३९ प्रतिशत रोगी भारत में है।

दवाओं और रासायनिक पदार्थों के जरिये मलेरिया उन्मूलन संभव नहीं लगता क्योंकि मच्छरों में इनके प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार कीटनाशकों के घोल से लेपित मच्छरदानियों के व्यापक प्रयोग से मलेरिया में ६० प्रतिशत तक कमी की जा सकती है। मलेरिया से बचाव के टीके भी विकसित किये जा रहे है और इस दिशा में सफलता मिलने की आशा भी है।

(स्वतन्त्र भारत, अगस्त १९९३)

क्षतिपूर्ति वनीकरण

क्षतिपूर्ति वनीकरण योजना सन् १९८२ में शुरू हुई, सरकारी दावों के मुताबिक अगस्त १९९२ तक ५० % लक्ष्य हासिल किया जा चुका था। अर्थात् तब तक नर्मदा सागर क्षेत्र में ४१,२०० हेक्टे० तथा सरदार सरोवर क्षेत्र में ४,८६१ हेक्टे० रकबे में पौधे रोपे जा चुके थे। इस वनीकरण के लिए सागौन, शीशम, महुआ, सिरस, शहतूत, नीम आदि प्रजातियों के पौधे उपलब्ध कराने के लिए नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण ने ७५ वन रोपणियां भी स्थापित की हैं। वन विभाग के उच्च अधिकारियों से लेकर निचले स्तर तक के कर्मचारी इस योजना की सफलता को लेकर काफी आशान्वित व गौरवान्वित हैं। अब यह अमला मिलकर जंगल की कितनी भरपाई कर पाएगा, यह तो समय ही बताएगा। परन्तु वृक्षारोपण की अन्य योजनाओं के समान ही क्षतिपूर्ति वनीकरण भी कागजों पर ज्यादा नजर आता है। मगर ४४,००० हेक्टेयर का घना सागौन का जंगल डुबाकर हम एवज में जहां जंगल लगाने की बात कर हरे हैं, उस क्षेत्र का ९९% हिस्सा तो वन ही है। इसे 'बिगड़े वन' के नाम पर इस योजना में शामिल किया गया है। स्पष्ट है कि यदि क्षतिपूर्ति होना है, तो राजस्व की परती जमीन या अतिक्रमित जमीन खोजकर उस पर वृक्षारोपण करना होगा तथा इसके रख-रखाव में लोगों की भागीदारी भी सुनिश्चित करनी होगी। तभी हम कह सकते हैं कि हमने ईमानदारी के साथ एवजी जंगल लगाया।

बेशक, कुछेक 'आदर्श' गांव भी जरूर हैं वन विभाग की नजर में। खंडवा जिले के कावेरी वन मंडल का पनाली गांव ऐसी ही एक आदर्श मिसाल हैं, जनता के जुड़ाव की। शायद इकलौती भी हो। बड़े गर्व से बताया जाता है कि स्वयं विश्व बैंक के एक दल ने १९९१ में यहाँ लोगों की भागीदारी की तारीफ की थी। लगभग ९५० हेक्टेयर वृक्षारोपण वाला यह गांव प्राधिकरण का एक प्रादर्श है जिसे वे दर्शनीय स्थल के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं।

(स्रोत फीचर्स, जून १९९३)

जैव विविधता प्रणाली

पौधों और प्राणियों की विभिन्न प्रजातियों के विलुप्त होने को लेकर पर्यावरणविद् चिंता प्रकट करते आ रहे हैं लेकिन अभी तक इस क्रम को रोकने के लिए कोई ठोस कार्रवाई नहीं की जा सकी है व समस्या गंभीर होती जा रही है। वाशिंगटन स्थित एक अनुसंधान संगठन द्वारा किये गये अध्ययन से पता चलता है कि मानवीय गतिविधियों के कारण पौधों और प्राणियों की विविधता को बनाये रखने वाली जैविकीय प्रणाली लगभग ध्वस्त होने के कगार पर पहुंच गयी है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इससे मानव जीवन भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा।

वर्ल्डवाच इंस्टीट्यूट के एक अनुसंधान एसोशिएट जान रियान का कहना है कि दुनिया के विभिन्न हिस्सों में छोटे पैमाने पर ये प्रभाव दिखाई भी पड़ने लगे हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने भारत में मेढ़कों की तेजी से घटती आबादी का हवाला दिया है। प्रौढ़ मेढक दिन भर में अपने वजन के बराबर कीटों का भक्षण कर जाता है। जाहिर है कि मेढ़कों की संख्या घटने से कीटों का प्रकोप बढ़ेगा। पश्चिम बंगाल में मलेरिया के फैलाव और महाराष्ट्र में फसलों पर कीटों के बढ़ते प्रकोप को इसी कारण के साथ जोड़ा जा रहा है।इसी प्रकार वाशिंगटन के पास स्थित चेसापी के खाड़ी में सीपों की तादाद घटते जाने के कारण पानी के प्राकृतिक निर्मलीकरण की प्रक्रिया गंभीर रूप से बाधित हुई है।कभी खाड़ी में सीपों की संख्या इतनी अधिक थी कि वे तीन दिनों के अन्दर समूचे पानी को छान डालती थीं। लेकिन बढ़ते प्रदूषण और मनुष्य दोहन के कारण उनकी संख्या में १८७० से अब तक ९९ प्रतिशत की कमी हुई है। परिणाम यह हुआ है कि खाड़ी का पानी अधिक गंदा व आक्सीजन-न्यून होता जा रहा है।

(स्वतंत्र भारत, ३ अक्तूबर १९९३)

घरेलू जड़ी-बूटियों से उपचार

वैद्य मायाराम उनियाल, नयी दिल्ली

हमारे देश में छः ऋतुएं सूर्य की गर्मी के आधार पर उत्तरायण (आदानकाल) एवं दक्षिणायन (विसर्गकाल) के नाम से जानी जाती हैं। ऋतु परिवर्तन के साथ शरीर में स्थित वात, पित्त एवं कफ का अवस्थानुसार संचय एवं प्रकोप होता है। उसके कारण शरीर में ऋतुओं के अनुसार अलग-अलग किस्मों के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यद्यपि शिशिर ऋतु उत्तम स्वास्थ्य काल माना गया है तथापि मिथ्या आहार-विहार के कारण या अचानक ऋतु परिर्तन के कारण सर्दी-जुकाम, खाँसी व रक्त के विकार तथा जोड़ों का दर्द (वातरोग) आदि विकार हो जाते हैं, क्योंकि शीत स्पर्श से कोष्ठ की अग्नि पिण्डीभूत होकर कोष्ठ एवं आन्त्र स्थित रस को सुखाती है। इसलिए मधुर, स्निग्ध, उष्ण, घी, दुग्ध सेवन तथा तेल की मालिश उपयोगी है। इस ऋतु में उत्पन्न रोग सर्दी-जुकाम, खाँसी, चर्म रोग एवं गठियावात के उपचार के विषय में क्रमशः जानकारी दी जा रही है।

सर्दी-जुकाम के लक्षणः सिर का भारी होना, गला बैठना, मुँह का स्वाद बिगड़ना, नाक से पानी बहना, हल्के बुखार का होना, बार-बार छींक आना या भूख न लगना आदि सामान्य लक्षण हैं। ऐसे लक्षण होने पर दोषों एवं अवस्थानुसार घरेलू स्थानिक जड़ी-बूटियों के उपचार से विशेष लाभ होता है, जिसमें कुछ अनुभूत नुस्खे इस प्रकार हैं-

अदरक का रस निकाल कर उसमें चार या पाँच दाने कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ एक या दो चम्मच दिन में ३ या ४ बार चाटने से लाभ होता है। इस उपचार से बलगम भी बाहर निकल जाता है और साँस लेने में कोई असुविधा नहीं होती है। यदि साथ में नज़ला हो तो अदरक के साथ नींबू का रस निचोड़कर एक या दो बूँद नाक में डालने से लाभ होता है। नीबू का रस गुन-गुने पानी के साथ लेने से लाभ होता है। यदि अदरक के रस को निकालने के साधन न हों तो उसका एक टुकड़ा मुँह में चबाकर निगला जाय तो यह रस गले के रोगों में भी लाभ करता है। भोजन से पहले अदरक का टुकड़ा नमक के साथ खाने से अन्न में रुचि बढ़ती है एवं गले का शोधन होता है। कहा गया है-

भोजनाग्रे सदापथ्यं, लवणार्द्रकभक्षणम्।

अग्नि सदीपनं रुच्यं, जिह्वाकण्ठविशोधनम्।।

इसी प्रकार सूखी अदरक, जिसे सोंठ कहते हैं, उसका प्रचलन भी गाँवों में प्रसव के बाद स्त्रियों को प्रसूतविकारों को दूर करने के लिये होता है। राजस्थानी कहावत है-

"ऐरी माई सवासेर सूठ खादी"

अर्थात् प्रसूता को सवासेर सोंठ का सेवन कराने से वे निरोग और बलशाली होती हैं। आयुर्वेद में इसके लिए सौभाग्यशुण्ठीपाक का शीतऋतु में सेवन दूध के साथ बताया गया है।

तुलसी से सभी परिचित हैं, इसके पौधे घर में लगाने से आरोग्य लाभ होता है एवं तुलसी के पत्तों का रस ३-४ कालीमिर्च के दानों के चूर्ण एवं शहद के साथ मिलाकर एक या दो चम्मच दिन में तीन बार लेने से सर्दी, जुकाम एवं बुखार में लाभ होता है।

यदि तुलसी का रस न निकल सके तो तुलसी की पाँच पत्तियाँ और साथ में दो कालीमिर्च के दाने मिलाकर चबा लें तो पुराना बुंखार एवं मलेरिया भी ठीक होता है।

नीम के पेड़ पर चढ़ी हुई गिलोय के काण्ड को कूटकर पानी में भिगो दें और नीचे जो सफेद चूर्ण बैठ जाय वह गिलोय सत्व कहलाता है। गिलोयसत्व को ५०० मिलीलीटर की मात्रा में उष्ण जल या शहद के साथ दिन में तीन बार सेवन करने से पुराना बुखार एवं चर्म रोग आदि रक्तज बीमारियों में लाभ करता है।

काली मिर्च, सोंठ, दाख, भारंगी और काकड़ासिंगी को सम भाग लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को २ से ३ माशे की मात्रा में गुड़ के साथ मिलाकर सेवन करने से बुखार और खाँसी में तुरन्त लाभ होता है। शतावरी, नीम, गिलोय का क्वाथ बनाकर पुराने गुड़ के साथ सेवन करने से लाभ होता है। पिप्पली, गिलोय और सोंठ समभाग लेकर क्वाथ बनाकर पीने से लाभ होता है। यदि साथ में कब्ज़ की शिकायत हो तो परवल की पत्तियाँ अमलतास फलमज्जा मुनक्का और पित्त पापड़ा को समभाग लेकर क्वाथ तैयार करें और छानकर रात्रि को २-३ औंस की मात्रा में लेने पर लाभ होता है। यदि क्वाथ आदि बनाने में असुविधा हो तो सितोपलादि चूर्ण के साथ संजीवनी वटी की एक गोली मिलाकर दिन में तीन बार शहद या गरमपानी से सेवन करें। चूसने के लिए एलादिवटी या लवंगादिवटी का प्रयोग करें। यदि खांसने से छाती में वेदना हो तो कुशल वैद्य से मिलें ऐसे में छाती और पीठ पर निर्गुण्डी तेल सरसों तेल के साथ कपूर और वचा चूर्ण मिलाकर मालिश करने से तुरन्त लाभ होता है। सांस लेने में कोई कठिनाई नहीं होती है। मुख को ढककर तुलसी के पत्तों का भाप लेने से लाभ होता है। यदि खाँसी में लाभ न हो तो मात्र बहेड़े का छिलका तवे पर सेंक कर मुँह में रखकर चूसने से लाभ होता है। यदि खाँसी एवं बुखार संक्रामक रोगों के कारण से है तो चिकित्सक से परामर्श कर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा स्नान व दिन में सोना बन्द कर देना चाहिए। सिर, माथा, गला एवं सीने को कपड़े से ढक कर रखें। पीने के लिये गुनगुना पानी उपयोग करें। मांस रसों का सेवन, स्वच्छ प्रामाणिक मद्य एवं पुष्टिकारक पदार्थों का सेवन स्वास्थ्यवर्धक है। कोष्ठ शुद्धि के लिये त्रिफला का प्रयोग गरम दूध के साथ रात को सोने से पूर्व करें। घरेलू नुस्खों में त्रिफला का विशेष महत्व है इसे लोक प्रचलित रसायन माना गया है। यथा-

हरड़ बहेड़ा आंवला घी शक्कर में खाय।

हाथी दाबै काँख में साठ कोस ले जाय।।

सर्दी जुकाम में बनफशा का जुशांदा अधिक लाभ करता है। यह बूटी पहाड़ों पर आसानी से मिलती है।

चूर्णोदक

वैद्य भानु प्रताप आर० मिश्र, महेसाणा

शताब्दियों पहले से भारतीयों को चूने का ज्ञान था। हमारे आचार्यों ने मांसपेशी , अस्थि, तरुणास्थि के रोगों में चूने का प्रयोग किया है। चूने का पत्थर भूमि में से खोदकर निकाला जाता हैं। यह ऊसर भूमि में अधिक मिलता हैं। इसे विशेष प्रकार के भट्टी में जलाकर चूना बनाया जाता हैं। कैल्शियम कार्बोनेट को गर्म करने पर चूना प्राप्त होता हैं। चूने को संस्कृत में चूर्ण, सुधा, हिन्दी में चूना तथा अंग्रेजी में लाइम कहते हैं।

संग्रह गंथों में चूर्णोदक का उल्लेख मिलता हैं। चूर्णोदक अर्थात चूने का पानी। यह लाइम वाटर नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

चूर्णोदक निर्माण विधि

१ भाग कली चूने को ८ भाग शुद्ध पानी में १०–१२ घण्टे भिगो दें। तत्पश्चात् फिल्टर पेपर द्वारा छानकर हरे रंग के बोतलों में भरकर सुरक्षित रख लेना चाहिए। यही चूर्णोदक अर्थात लाइम वाटर है।

बच्चे चूर्णोदक सरलता से नहीं पीते हैं अतः चूर्णोदक का सीरप बनाना चाहिए। सीरप बच्चे बड़े चाव से पीते हैं। १ भाग चूने के पानी में शक्कर २ भाग मिलाकर धीमी आँच पर उबालना चाहिए। जब ड़ेढ़ तार की चासनी तैयार हो जाय तब कपड़ों से छानकर उसमें संरक्षण द्रव्य मिलाकर संग्रह करना चाहिए। संरक्षण द्रव्य बाजार में तैयार मिलते हैं। चूने के पानी के सीरप को अधिक स्वादिष्ट और आकर्षक बनाने के लिए इसमें एसेन्स और रंग भी डाला जा सकता हैं।

मात्रा व अनुमान : तीन महीने तक बालकों को ५ से १०–१२ बूंद, एक वर्ष तक के बालकों को २० से ३० बूंद, तीन वर्ष तक के बालकों को ४० से ५० बूंद तथा वयस्क को २० मिली चूर्णोदक पानी, या दूध के साथ देना चाहिए।

चूर्णोदक का उपयोग

चूर्णोदक दीपन पाचन स्तम्भन तथा अम्लता नाशक है। जब शरीर में चूने की कमी हो तब चूने का पानी देना चाहिए। बालकों के दस्त तथा दाँत आते समय इसे देना चाहिए। बालकों में कैल्शियम तत्व की कमी के कारण पाचन तंत्र बिगड़ गया हो अथवा बच्चे के दस्त, अस्थि क्षय, प्रातःकाल में होता पतला दस्त तथा ग्रहणी रोग में चूने का पानी उत्तम लाभ करता है। बच्चों के पेट दर्द में सोया के अर्क के साथ इसे देना चाहिए। बच्चों के कृमि में रोग यह उपयोगी है। अम्लपित्त रोग शान्त हो जाता है।

चूर्णोदक ५० से १०० मिली० की बस्ति देने से गुदा एवं क्षुद्रान्त्र कृमि नष्ट हो जाते हैं। बिच्छू के दंश पर चूर्णोदक में नौसादर मिलाकर लेप करने से विष उतर जाता है। मुखपाक एवं मुखक्षत में चूर्णोदक से कुल्ला करने और कवल धारण करने से अच्छा हो जाता है। चूर्णोदक में अलसी का तेल फेंटकर सफेद मलहम तैयार किया जाता है। इसे आग से जले स्थान पर लगाने से ठंडक व राहत मिलती है। इसी प्रकार एरंड तैल अथवा तिल तैल के साथ चूर्णोदक को फेंटकर मलहम तैयार किया जा सकता है। इस मलहम का भी उपयोग जलने में होता है। उपरोक्त मलहमों का उपयोग खुजली में भी किया जा सकता है।

शीत पित्ती का घरेलू इलाज

चर्म के रोग या शीत पित्त जिसे पित्ती उछलना या छपाकी कहते हैं प्रायः सभी ऋतुओं में यह रोग देखा गया है। इस रोग का मुख्य कारण एलर्जी है। तथापि कतिपय घरेलू नुस्खे इसके उपचार में काफी लाभप्रद हैं। कच्ची हल्दी की छोटी गाँठ घिसकर गुनगुने दूध के साथ दिन में दो बार सेवन करने से लाभ होता है। यदि कच्ची हल्दी न मिल सके तो सूखी गाँठ को पीसकर एक ग्राम से दो ग्राम तक की मात्रा में हल्दी को तवे पर हल्का सेंक देकर दूध के साथ एक या दो बार प्रयोग करें या हरिद्राखण्ड २ चम्मच , सारिवादि वटी एक गोली की मात्रा में दिन में दो बार दूध या जल के साथ सेवन करें।

यकृत की क्रिया ठीक न रहने पर घीकुआर (घृतकुमारी) रोजाना रात को गरम जल से लें। दिन में २ ग्राम कुटकी चूर्ण गरम जल से दो बार प्रयोग करें। अजवाइन या नीम की धूनी देने से खुजली एवं दाह में लाभ होता है। गोमूत्र में नहाने और गेरु के चूर्ण को घी में मिलाकर हल्का गरम कर शरीर पर मालिश करें और स्वर्ण गैरिक का आन्तरिक प्रयोग भी करें तो अधिक लाभ होता है।

मस्तरामजी

कथा : पं० काशीनाथ गौरे
चित्र : सन्दीप सेन

ये देखो ! अणुवीक्षण यंत्र से कैसे दिखाई पड़ते है
यदि कीटाणु शरीर के किसी स्थान पर जम जाते है तो त्वचा मे घर कर लेते है.
इनसे दाद खुजली आदि त्वचा रोग हो जाते है !
कुछ लोगों के पसीने से बदबू आती है..
मैनें भी देखा है कि कुछ लोगों के पास बैठना दूभर हो जाता है !
हाँ, परन्तु ऐसी बदबू भी सफाई की कमी से ही पैदा होती है.
वह कैसे ?
शायद तुमने देखा होगा कि सबसे अधिक बदबू बगलों से आती है.
बगलों मे पसीना बराबर आता रहता है.. यदि लगातार सफाई न की जाय..
.. तो मैल और कीटाणु उसमे जम जाते है और उनसे ही तेज बदबू पैदा होती है.
क्या नहाने से ऐसी बदबू दूर नही होती ?
केवल नहाना अर्थात पानी डाल लेना कदापि पर्याप्त नहीं है.
नहाने का सही तरीका क्या है ?
क्रमशः

ISSN No. 0971–2267

रजि० न० ५११०३/९०